।। श्री सद्गुरु प्रसन्न ।।

संरक्षक
परमपूज्य सद्गुरु वासुदेव रामेश्वरजी तिवारी

संपादक मण्डल
श्री प्रकाश मिश्रा, दुर्ग
श्री योगेश शर्मा, रायपुर

संपादकीय सलाहकार :– देवेन्द्र सिंह राय, भोपाल

उद्बोधन 2017

अनुक्रमणिका

क्र0	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	**अपनी बात**	**1**
2.	**सद्गुरु आदेश :** शरणागति एवं जीवन मुक्ति का उपाय, आप श्रमिक हैं, गुरूजी स्वयं पर, भरोसा, जानो, विश्वास, वेदांत और व्यवहार, समर्पण, मैं वही हूँ, सत्गुरु की महिमा, केवल दिया जलाओ, सही पढ़ाई, सही अभ्यास कैसे रहें?, क्या जानना है?	**02–20**
3.	**अन्य लेख :** तेल्हारा में गुरूजी, Guruji - Divinity Incarnate, दोस्ती, महाराष्ट्र में गुरुजी का आध्यात्मिक प्रवास, तेल्हारा में भारत पदार्पण दिवस 2016, कबीर का योग, ज्ञान की भूमिकाएँ, योगी का मनोभाव, कठिनाई के समय	**20–44**
4.	**शिष्यानुभव :** एक ड्रायवर के अनुभव, गुरुजी कृपा के सागर हैं, गुरूजी की कृपा, गुरूजी का गरिमापूर्ण व्यक्तित्व, अखण्ड ब्रह्मांड में श्री सत्गुरुजी के दर्शन, मन की बातें, गुरुजी की आशीष,	**45–56**
5.	**आय व्यय पत्रक**	**57–58**

अपनी बात ✍

प्रिय गुरु बंधु / बहन,

गुरु पर्व पर आप सबका हार्दिक अभिनन्दन एवं प्रणाम। आशा है आपका व परिवार का स्वास्थ्य गत अवधि में अच्छा रहा होगा और आपकी साधना भी भलीभांति चल रही होगी। गत वर्ष 6 अक्टूबर को तेल्हारा जिला अकोला, महाराष्ट्र में पदार्पण दिवस अत्यधिक उत्साह के साथ मनाया गया। इस विषय पर अलग से एक लेख में पूरा विवरण भी दिया गया है। आश्रम में लगातार कुछ न कुछ निर्माण होता रहता है जिससे यह परिसर परिवारजनों के लिए अधिक सुविधाजनक व भव्य बन सके। आपसे अनुरोध है कि स्वविवेक से अधिक से अधिक सहयोग इस दिशा में करें। यह भी विनती है कि साधना या लौकिक जीवन संबंधी कोई विशिष्ट अनुभव आपको हुआ हो तो उसे उद्बोधन में प्रकाशनार्थ अवश्य भेजें।

पू. गुरुदेव के कुछ दिव्य उदघोष इस प्रकार हैं—1. मैं समय और काल से परे हूँ। 2. लोग शास्त्रों की बातो को पढ़कर बोलते है, परन्तु हमारी वाणी को शास्त्र प्रमाणित करते हैं।3. मेरे जैसा विश्व में नहीं है। 4. मैंने मृत्यु को लाँघ लिया है। 5. ये हजारों वर्ष की तपस्या है। 6. हमने उसको जाना जिसको जानने के बाद कुछ भी जानना बाकी नही रहता या जिसको पाने के बाद कुछ भी पाना बाकी नही रहता। ये वचन हम सब लोगों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत हैं जिन पर चल कर ही हमें साधना पथ पर सफलता मिल सकती है।

गुरुजी की आध्यात्मिक एवं भौतिक कृपा का अनुभव सभी परिवार जनों को लगातार होता रहता है। उद्बोधन ही वह माध्यम है जिससे हम इन अनुभवों को अभिलिखित कर सुरक्षित कर सकते हैं एवं सभी सदस्यों की जानकारी में ला सकते हैं। अतः आपसे हमेशा की तरह अनुरोध है कि पत्रिका के लिये लेख / अनुभव / फोटो अवश्य भेजें। पत्रिका के प्रकाशन में श्री प्रकाश मिश्रा दुर्ग, श्री योगेश शर्मा, रायपुर, श्री हितेश वैद्य एवं कृष्णा प्रिंटिंग होम, भोपाल के श्री कृष्ण कांत अग्रवाल का विशेष योगदान रहा है। हम उनके आभारी हैं। गुरु परिवार की सदस्या श्रीमती लीला मनोहर तेजवानी का हाल में ही देहावसान हो गया है। गुरुजी से प्रार्थना है कि उन्हें शांति प्रदान करें।

पूज्य गुरुजी का आशीर्वाद बना रहे और हम सब परस्पर प्रेम करते हुए एवं साधनापथ पर चलते हुए गुरुजी के आदेशों का पालन कर सकें, गुरुजी से इसी प्रार्थना के साथ,

आपका,

डी. एस. राय

शरणागति एवं जीवन मुक्ति का उपाय

सत्पुरूष से पाने के लिये भजन पूजन, यज्ञ करते हैं, यही आत्म यज्ञ है। जब तक आप अपने आप को समर्पित नहीं कर देंगे, तब तक मैं का पलड़ा छूटता नहीं है और जब तक मै करता हूॅ , ये रहता है, तब तक कुछ भी नहीं मिलता। कर्म करके सो जाईये , बोलो कि मुझे समझाइये, मुझे भक्ति दीजिये, कैसा करना, कैसा नहीं करना। आप ही तो सब कुछ हैं, जीवन के आधार हैं। मन में रखना कि ये सब गुरूजी का है, हम तो भाई एक सेवक है, एक बार भार डाल दिया तो उस पर डाल दिया, फिर लेना देना उसका काम है जिसको आप मानते है, उनसे बराबर होता है, अपना काम सिर्फ ऐसा करना है, जो कुछ बाकी सब तुम्हारा है, मेरा कुछ नहीं है। सौप दिया है तो तुम्हारा काम है करने का। तुम्हीं करोगे और तुम्ही सब कुछ हो ऐसा बोझ उस पर डाल करके दृढ निश्चय, विश्वास , भरोसा और पूर्ण श्रृद्धा के साथ बैठना है। बच्चे को बगैर रोये मॉ दूध नहीं पिलाती, आप लोग बोलते हैं किन्तु गुरू जी के सामने रोते क्यों नहीं? अधेरें में रात में बोल कर सो जाना, कुछ दिनों के बाद आपका सब काम हो जायेगा। उठते समय प्रणाम करना, कहना, आपने मुझे उठाया है मैं चला, लाभ हानि तुम जानो, ये कहकर अपने काम में लग जाना, तू जान तेरा कारोबार जाने, मैं नहीं जानता। जैसा बताया खाली वैसा करो, जरूरत पडे तो वहीं अधेरें में झगड़ा करो। आपका ये लोक और परलोक दोनों सिद्ध हो जाता है आपके जीवन में परिवर्तन हो जायेगा, आचरण में, भाषा में , कृति में परिवर्तन आ जायेगा। माने संसार में रहकर सब दुःख भोगते हुये जैसा बताया गया है, वैसा करिये।

जिसका मन माने बुद्धि अनन्य भाव से माने, एक भाव से हो गई है, बस यही भगवान है। इनसे मेरा सब काम हो रहा है और मेरा कोई नहीं है । ऐसी धारणा होनी चाहिये सेवा क्या है ? आप अपने आप को अर्पण कर दिये और जो कुछ चाहिये , बोलिये, वो सब कुछ देता है। गुरू के चरणों में लिपटे रहना, सोते समय वही तकिया बनाया और सो जाओ , जागे तो तकिया में, सोये तो तकिया में ,और जो कुछ बोलना है हठ करके बोलिये। जिस दिन वो निर्भर हो गया , संसार के प्रपंच से, दुःख–सुख से, पुर्नजन्म से तत्काल वो मुक्त हो गया। गुरू जी के आदेशानुसार कर्तव्य पालन में लग गये। बाकी समय गुरूजी को मन दे दिया। अपना कोई विचार नही । कोई तन नहीं, कोई मन नहीं , कोई धन नहीं और कोई काम नहीं, अपना कुछ नहीं है। बस गुरू जी के चरणों में पड़े रहना है। गुरूजी को जानते हैं पहचानते हैं और आपको विश्वास है तो सब जगह आनन्द है। कोई भी व्यक्ति हो, सीधा होकर रह जाता है, सांप भी आ जाये तो सीधा होकर रह जाये। आपने शरण ले लिया अर्थात तन मन धन तीनों समर्पित हो गये, इसी का नाम शरण है। ये सब गुरूजी का कारोबार है। सारा संसार गुरूजी का है और हमारा संसार भी गुरूजी का है। हम तो उनके आदेश का पालन करते हैं। फिर जीवन यापन के अन्दर न राग रहेगा, न द्वेष रहेगा, न काम रहेगा, न क्रोध रहेगा, न लोभ रहेगा, न मोह रहेगा केवल भोग मात्र रह जायेगा। गुरूजी का आदेश है,

प्रपंच छोड़ना नहीं है । प्रपंच भी चाहिये और आत्मानुभूति भी चाहिये। पूरी तरह से समर्पण नहीं होने पर अहंकार बहुत दबायेगा और अपना ही नाश कर जाता है । मेरा क्या है, सब तेरा है, ये तेरा मे भी भारी रहस्य है। कुछ नहीं होता है तो उनका काम है सब उन्हीं का है ऐसा समझ कर चलिये। कामिनी कांचन में रह करके ये ध्यान मे रहना चाहिये जो आपको बताया गया है ।

हम इतना ही जानते है कि मनुष्य हैं न आप, तो आपमें गुण हैं, उसकी वृद्धि करो। बढ़ाइये आप। इस गुण से जो दोष है वो दूर होगा। ये गुण जैसे–जैसे बढते जायेंगे, एक –एक बूंद से घड़ा भरता है, इसी प्रकार से आप जैसे–जैसे आप जप करते जायेगें, याद करते जायेगें, एक दिन में एक दफे, दो दफे, तीन दफे, ऐसे बढते जायेगें तो, जो आपका दोष है, जो अभाव है वो दूर होते जायेंगे। दोष नहीं अभाव कहता हूॅ। तुम्हारे पास कोई आता है, माने उसको कोई भय है या कोई चिन्ता है, जो कुछ है वो ऐसा बतायें कि उसका भार कम हो जायेगा। हम दोष ही देखते बैठेंगे नही, हमारा काम है, कुछ दें। हमारे पास बीज हैं, प्रकृति के बीज हैं, ये मंत्र है, इसमें ये बीज लगा दो, आपका काम हो जाता है, इसलिये हम जो दीक्षा देते हैं, क्लीं जो बीज है वो पूर्ण काम बीज हैं। आपकी शुभ कामनायें जो रूक गई, नई बनते, और जो लोग विघ्न उत्पन्न करते हैं, या करने की इच्छा रखते हैं, ये सब अनुकूल हो जाते है। इतनी ताकत है क्लीं बीज में, वो पूर्ण काम है। यही गृहस्थाश्रम से मोक्ष माने आत्मसाक्षात्कार तक सहायक हैं क्लीं जो है। शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गीला नहीं कर सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकती, ऐसा जो अखण्ड़, ये ज्योति अखण्ड़, यें मण्ड़लाकार है। अभ्यास करते–करते, करते–करते, ,,,,,, ये कब होता है मण्ड़लाकार जब पश्चिम मार्ग में घुसने पर भूलोक, उसके बाद पृथ्वी तत्व उसको शुद्ध करके फिर जल तत्व उसको शुद्ध करें फिर अग्नि तत्व। पृथ्वी तत्व शुद्ध होने पर जड़ता दूर हो जाती है। जल तत्व बोले तो रसानुभूति होती है यानि पृथ्वी तत्व से जल तत्व सूक्ष्म है, जल से अधिक सूक्ष्म क्या है ?तो अग्नि आया । पृथ्वी में पॉचों तत्व हैं, जल मे चार अर्थात पृथ्वी को छोड़कर शेष चारो। अग्नि में तीन हैं अग्नि, वायु, आकाश। अग्नि माने प्रकाश, अग्नि तत्व से ऊपर आये तो वायु, वायु तत्व में आये तो यहॉ सतोगुंण की प्रतिष्ठा होती है, यही चौथा लोक है। साधक को शक्ति आ जाती है, वह शान्त हों जाता है। बाकी जो नीचे तीन तत्व हैं इसमे तमोगुण, रजोगुण प्रधान हैं। अभ्यास करके ऊपर आते हैं तो पृथ्वी तत्व से जो पाँच तत्व हैं, पाँच तत्व शोधन, पंच महाभूत शुद्धि इसे कहते हैं। हृदय से कण्ठ तक अग्नि तत्व है, कण्ठ से लेकर भुवोर्मध्य पर्यन्त तक वायु तत्व है, हृदय जो अनाहत चक्र है, कण्ठ हैं ये विशुद्ध चक्र है। हृदय से कण्ठ तक ये वायु तत्व है, तो वायु तत्व में आने पर ये वायु सवर्त्र है, आकाश जहाँ जहाँ है वहाँ वहाँ वायु प्रवेश करती है यहाँ सतोगुण है स्थिरता आती है, विचार अच्छे हो जाते हैं और शंकायें, संशय जो होते हैं उनका समाधान हो जाता है और आनन्द की प्रतीति होती है। फिर भी वो गिर सकता है, प्रयास करके फिर ऊपर चला गया जिसे विशुद्ध चक्र कहते हैं यहॉ मृत्यु की अनुभूति होती है। चाहे कोई भी साधक हो, यह स्थिति सामने आती है, मृत्यु की अनुभूति होती है, यहाँ कोई बचाने नहीं आता।

इस केंन्द्र पर हमारी बुद्धि , हमारे विचार, हमारे भाई बन्धु, लेने देने वाले के प्रति कुठिंत हो जाती है, कुछ भी सूझबूझ नहीं रह जाता, केवल एक मात्र रह जाता है, गये। यहॉ आने पर साधक डर गया तो फिर से नीचे चला जाता है , माने पृथ्वी लोक में, जड़ लोक में आ जाता है। जड़ लोक माने क्या ? पृथ्वी तत्व, पंच क्लेश , सुख दुःख, मृत्यु भय, अविद्यया, अस्मिता , राग द्वेष , अभिनिवेश ये बने रहते है, लोभ–भय, अपना –पराया, ये सब बने रहते हैं। डर गये तो नीचें आ जाता है। अगर नहीं डरा, बना रहा उसी स्थिति में तो मृत्यु केन्द्र के ऊपर निकल जाता है, सुषुम्ना शीर्ष है, मेरूदण्ड है, उस पर एक गोला, ये मृत्यु केन्द्र है। किसी किसी को उल्टी, दस्त होते हैं, मरणासन्न स्थिति में पड़ा रहता है, भयंकर पीड़ा होती है, परन्तु मरता नहीं है, यहाँ पर भंयकर क्लेश होता है।

मृत्यु केन्द्र पार कर गया तो, यहाँ बोध होता हैं, यहाँ पर प्रेतात्मायें जमा हो जाती है, कोई बाप बनता है, कोई माँ, कोई बहन, कोई भाई। प्रलोभन देते हैं हम तुम्हें ये दे देंगे,,,,। देवी देवता मिलते हैं। वो समय समय पर बेहोश होता है, फिर होश आता है , तो प्रलोभन फिर देते हैं, अगर ये प्रलोभन में नहीं आया तो ऊपर निकल जाता है तो आकाश तत्व में प्रवेश कर लेता है अर्थात अष्टम भूमिका। वायु तत्व का भेदन करके आकाश तत्व में स्थित हो गया। **भिद्यते हृदय ग्रन्थि छिदयन्ते सर्वसंशयाः ।क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तेषाम् दृष्टि परावरे ।।** हृदय माने मन , मन में हमारे जितनी वासनायें है, अनेक जन्मों के संस्कार आदि हैं ये जब तक मृत्यु केन्द्र का भेदन न हो, और भेदन करके जब तक आज्ञाचक्र में नहीं आते, गायत्री के प्रमाण से तपोलोक में नहीं आते, इसी का नाम तपोलोक है। ये मृत्यु केन्द्र के बार–बार भेदन करने के द्वारा यही दूसरो की भाषा में निर्जरा है, बार–बार विधाती कर्म, जो बार बार जन्म लेना पड़ता है, ये सब जलते चले जाते हैं। जो बार बार र्निबीज समाधि, मर जा चुका हो, यानि जो जीते जी मर चुका है वो पंड़ित है। पंड़ित माने पंच तत्वों का बोध हो , ज्ञान हो।

तपो लोक में आने पर आपकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है, अभयं सत्व संशुद्धिः। सत्व माने बुद्धि। छटवीं भूमिका जो है ,बुद्धि। सत्व माने बुद्धि। छटवीं भूमिका जो है , तपोलोक, सुशुम्ना मार्ग से त्रिवेणी संगम है, सत्य लोक है ये, वेद के आधार से, गायत्री मंत्र के आधार से। इसके बीच मे हमारे मस्तिश्क के सामने का जो भाग है, को छोड़ दें। पीछे का जो भाग है, उसके सात विभाग हैं, उनके कार्य क्षेत्र व परिणाम अलग अलग है। बुद्धि। सत्व माने बुद्धि। छटवीं भूमिका जो है, एक तो गति केन्द्र है, इससे चलने फिरने का कार्य। इसके सामने एक मोटर केन्द्र है, ज्ञान केन्द्र है , ज्ञान तन्तु है, गति और ज्ञान ये दोनों साथ साथ चलते हैं, मच्छर कहाँ काटा झट मालूम हो जाता है और हाथ वहीं पहुँच जाता है, तीव्र गति से। आज्ञा चक्र में जब आते हैं, तपो लोक में, बृहद मस्तिष्क में यही है मन का केन्द्र ।मन का नाम हृदय है, हृद, मन, स्वान्तः, मानस, चित्त, चेत ये सब नाम है हृदय के। ये भेदन होने पर शुद्ध हो जाता है, बुद्धि भी शुद्ध हो जाती है। बुद्धि को, मन को चित्त कहा गया है, सारा संसार हमारी बुद्धि में है, बुद्धि शुद्ध हो जाती है। सत्व नाम बुद्धि का है। मृत्यु भय चला जाता है और ये पाँच क्लेश हैं अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेश, अभिनिवेश यानि मृत्यु भय, ये

सब शुद्ध हो जाते हं, इसी को सत्व संशुद्धि कहते हैं, तब ये ज्योति आयेगी जायेगी। आयेगी जायेगी।

आज्ञा चक्र में आने के बाद जो चाहो देख सकते हो, जैसा संकल्प करो, वैसा देख सकते हो, इसकी सामर्थ्य आ जाती है। अब ज्योति का सम्पर्क आज्ञा चक्र माने सत्व लोक से हो जाता है, तब जैसे जैसे उसकी बुद्धि आत्मा की तरफ आकृष्ट होती चली जाती है तब ये आत्मा जो आदित्य वर्ण है धीरे धीरे बिन्दु रूप में, फिर धीरे धीरे चन्द्रमा रूप में, फिर सूर्य, फिर दोनों जब मिल जाते, तब उनका स्वरूप अग्नि जैसा हो जाता है। जब अग्नि प्रकट होती है, जैसे जैसे संस्कार तीव्र गति से ,,,,,,,,मृद्र मध्य , तीव्र वेगानाम सम्भवः। अभ्यास के दौरान किसी किसी को चींटी की चाल से , किसी को मेढक की चाल, किसी किसी को बन्दर की जो एक डाल से दूसरे डाल पर जाता है, इस तरह से होता है, आपका जो है मध्य गति से है। यहॉ से चला तो रूका ही नहीं , मृत्यु केन्द्र पर आया पर भी रूका नहीं, ऊपर गया तो क्या हो गया सारे मस्तिष्क में ,,,,,,,,,,सहस्त्रार में–एक छेद है जिसे ब्रम्हरन्ध कहते हैं, बालक जन्म लेता है तो उसके सिर के ऊपर आगे की ओर एक गड्डा सा रहता है। कबीरदास कहते हैं – दसवीं खिडकी से बोले एक लडकी, लडकी माने कुण्डलिनी। ब्रम्हरन्ध, साकेत, निरंजन, गोलोक, राधा लोक, अलख आदि सब उसी के नाम है। बाकी ये सब ठाट है, ये ऐसा है, इस रूप में है– ये सब आपका संकल्प है। ये जो संकल्प है वही आकृतियों के रूप में आते है। दो हाथ, चार हाथ, आठ हाथ, सौ फीट आदि,,,,,, ये एक ही महाशक्ति है, जो आपके संकल्प के अनुसार अपने को व्यक्त करती है। आपको वरदान देती हैं, आप पाकर मस्त हो जाते है और आगे बढ नहीं पाते, ये नहीं होना चाहिये। अपने को वे चाहिये आत्मा स्वयं ज्योर्ति भवति। अखण्डमण्डलाकारं, जब यहाँ पहुच जाते हैं, और ये ज्योति है, कौन सी ज्योति है ?ज्ञान नेत्र। ये देखो, ये हमारा मस्तिष्क है, ये यहॉ पर, मिर्जापुरी लोटा होता है न,ऐसा 2 मिली मीटर साइज का बटन होता है, उसी को पीनियल बॉडी कहते हैं। उसी को ज्ञान नेत्र, दिव्य चक्षु कहा है, मेडिकल भाषा मे तीसरा नेत्र , रेमिनेन्ट थर्ड ऑई कहा है। यहॉ ध्यान करने से यहॉ पर एक नाडी है, जिसे नर्व टर्मिनैलिस कहा है। ऑलफैक्टरी/ गन्ध महा नाडी के साथ साथ, वह आती है। आप्टिक नर्व के साथ साथ लपेटकर पीछ से, थैलामस मे घूमकर फिर पीनियल बॉडी मे समाप्त हो जाती है। पीनियल बॉडी यानि जो तीसरी ऑंख है, वो मेडिकल साइंस के अनुसार ऑख नहीं है, पर वह ऑख का काम करती है, और उसमे बाइब्रेशन/ स्पंदन होता है जिसके कारण खूब नशा होता है, कुछ बोध होता है। इतना नशा चढ जाता है कि वह अपने आपको भूल जाता है। जहॉ वह भूला कि अपना काम बन गया, क्योंकि जब तब शरीर का बोध है, तब तक वह प्रकाश नहीं आता, साँस भी बन्द हो जाती है, रक्त संचरण की क्रिया भी मंद हो जाती है लेकिन वह मरता नहीं हैं क्योकि केवल प्राण का कार्य है, बाकी शरीर के जितने प्राण हैं, सब शरीर में यथास्थिति हो जाते है, स्थिर हो जाते है यही स्थाई भाव है। स्थाई भाव आने से जो प्रकाश है चन्द्र या सूर्य जैसा प्रकट होता है, धीरे धीरे बढ़कर सारे ब्रम्हॉण्ड में भर जाता है, ये प्रकाश इतना आर्कषक होता है कि आप

वर्णन नहीं कर सकते। आप अन्दर बाहर प्रकाश ही प्रकाश पायेगें और कुछ नहीं। यहॉ इसी को सगुण कहा, यहॉ तक सबीज समाधि है । वे र्निगुण निराकार है, इस सगुण में करके, वो ज्योति स्वंय अपने आपको प्रकट करके आकाश की तरह मण्डलाकार, अखण्ड मण्डलाकार है। तो जहॉ तक आकाश है वहाँ तक ज्योति है। बाह्य संवेदना शून्यत्व होती है, वह भाव है, न हिलता न डुलता, न बोलता न चालता, न सॉस लेता। लेकिन उस अखण्ड मण्डलाकार में ज्योति है, वह है आत्म ज्योति, यही आत्मा है यही आत्म साक्षात्कार है। विष्णु, शंकर, देवी–देवता , साधू–संत सब के पीछे ज्योति का वलय है। कोई भी संप्रदाय हो सब में वलय है, इस प्रकार बोध होता है। लेकिन वो जो अदृश्य हो जाता है, तभी आपको बोध होते रहता है। जो वेदनायें होती हैं वो सब समाप्त हो जाती हैं, और बड़ा आनन्द रहता है, वहॉ आनन्द के सिवाय कुछ भी नहीं। शरीर के पॉच कोष हैं। अन्नमय कोष– अभी तो हम अन्न के लिये मारे मारे फिर रहे हैं, भले ब्रम्ह की बात करें, क्या रखा है उसमें? फिर प्राणमय कोष– अन्न नहीं मिला तो प्राण चले जायेगें। **मनोमय भिद्‌दते हृदय ग्रन्थि, छिदयन्ते सर्व संशयः,** तब सर्व संशय दूर होते हैं, हृदय माने मन तब ऊपर आते हैं नीचे नहीं। पन्चम् केन्द्र यानि मृत्यु केन्द्र, उसको लॉघ के जब ऊपर आ जाते हैं, **दशेनिन्द्रयानानि तनः तेशा,,,,,,** । इस चक्र का भेदन करके तब कोई दोष नहीं रह जाता है, उस काल में तब ये ज्योति प्रकट होती है। तो जब मनोमय कोष का भेदन करके विज्ञानमय कोष में पहुँचते हैं, तो जो आज्ञाचक्र है, ये विज्ञानमय कोष है। और आज्ञाचक्र के ऊपर सत्य लोक है, यही आनन्दमय कोष है।

जब आपकी सतोगुण की परीक्षा हुई, तब मृत्यु केन्द्र पर आये तो, **ब्रम्हविदवर**। आज्ञा चक्र में आये तो **ब्रम्हविदवरीयान।** सत्य लोक मे आये तो **ब्रम्हविदवरिष्ट** होता है। ये जो **ब्रम्हविदवरिष्ट** है जो आत्मक्रीड़ होते है वे ही ब्रम्हविदवरिष्ट है। ब्रम्हवेत्ता मे सबसे वरिष्ट होते हैं, फिर अपने जैसा सबको तैयार करके चलता है दुनिया में समाज में। ये है निः स्पृहः, र्निमोह, निरहंकार। तब नव जीवन आरम्भ होता है, आज्ञा चक्र में आने के बाद। वहॉ लोभ नहीं, मोह नहीं, सुख नहीं दुःख नहीं, अपना नहीं, पराया नहीं, सब समान हो जाते हैं। उसको घर नहीं, द्वार नहीं, यानि ऊँच नीच नहीं ये सब कुछ भी नहीं रह जाता है। ये सत्य है। सब सामर्थ्य आ जाती है, अतीत व अनागत का बोध होने लगता है। आनन्दमय कोष, सत्व लोक जिसे कहते है। ब्रम्ह रन्ध है, उसी को मेडिकल भाषा मे इन्ट्रावेट्रिकुलर फोरामेना कहा गया है। एक छिद्र है उसी छिद्र में जब आप प्राण स्थापित करते हैं, तो सारा ब्रम्हाण ज्योति से भर जाता है और इतना आनन्द आता है कि जिसका वर्णन नहीं कर सकते, यही अदभुत रस है। तुलसीदास जी ने इसका वर्णन किया है, जो नहीं देखा जो नहीं सुना, मनहुॅ में न समाये। मन भी नष्ट हो जाता है, जो सब में समाया, फिर भी सब उससे अलग हैं, माने अन्दर बाहर सर्वत्र है ।

तात्पर्य कहने का यह है कि अगर यह देह इस योग्य न होती तो आत्मा को धारण करने में आत्मसाक्षात्कार करने में आज तक कोई भी समर्थ न होता, यही कन्चन काया है। आपकी मल

मांस की काया चली जाती है।

उसके बाद अन्नमय , मनोमय,, कोष शुद्ध हो गया, उसके बाद विज्ञानमय कोष तब ये दूसरी बातें होती हैं, ये वो शरीर है, ये ज्योर्तिमय पिण्ड है इसे आप पानी में भिगा नहीं सकते और इसे आप हवा से सुखा नहीं सकते। ये सत्य बात है, हमारे पास दो तीन सौ लोग हैं। चार पॉच तो इसी में रहते हैं सदा। बालक हैं, बालिकायें हैं महिलायें हैं पुरूष हैं। इसी में रहते हैं सदा और यही कार्य है हमारा, जो मैं कार्य करता हॅू। अपवर्ग अर्थात वर्गो से परे। वर्ग में वर्गीकरण याने क्लासीफिकेशन स्थिति यानि सीमा सीमित होना। ऊपर की क्लास में , मेरिट में अपवर्ग में सभी भेंट या पुरुस्कार देते हैं। बाहर के विषय के संबन्ध में अर्थात ये व्यवहार हो गया। भीतर के विषय के सम्बन्ध में कहें तो उसका जीवन पूर्ण हो गया, जीवन का कार्य संपन्न हो गया। ये अपवर्ग है माने मोक्ष। आज्ञा चक्र में आने के बाद गुरु उपदिष्ट मार्ग से यदि वह चाहे तो आकाश गमन कर सकता है, देख सकता है, सुन सकता है, पढ़ सकता है, कहीं भी आ जा सकता है। तो वह पड़ा रहता है, डा0 आता है, देखता है, कहता है इसको कुछ नहीं हुआ। न बोलता, न चालता, वह पड़ा रहता है, लेकिन डा0 कहता है कि भाई उसे उठाना नहीं। अभी लोग जीवित हैं यह सत्य है वह आता है चला जाता है, क्योकि क्या होता है, 24 धन्टे में नहीं नहीं 4–6 घन्टें में शरीर अकड़ने लगता है। आत्मा न रहे तो ये शरीर अकड़ जाता है अगर अकड़ गया शरीर तो समझो मर गया। अगर नहीं अकड़ा तो 24 घन्टे बाद भी, 36 घन्टे बाद भी देखो कुछ नहीं होता, तो महीनों गिनते पड़ा रहता है। कुछ नहीं होता यही कैवल्य है। वो मरता नहीं वापस आता है लेकिन वापस आने के बाद फिर उसको कोई चिन्ता नहीं । **अनन्याशिचन्त्यमतरेमरम ये जना,,,,,,योगक्षेमं वहाम्यहम्** । अनन्य भाव रहता है उसका कोई और भाव नहीं रहता। अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तम् येन चराचरम् । अखण्ड हो जाता है वो आया गया, आया गया नहीं होता है, उसी में सदा रहता है, सदा सर्वदा । यही सनातन शब्द का अर्थ है सदा,,,,,,,,,,,। वह सदा अखण्ड़ बना रहता है। **जगतः अस्मिन् वासस्य देवा वासुदेवा**। आत्मा स्वयं ज्योर्ति भवति।

ठीक तुम जब निर्दोष हो तो तुम्हें दुर्व्यवहार के बारे में एकदम उदासीन होना चाहिए क्योंकि तब तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज नहीं होती जिसके लिए तुम अपने–आपको दोष दो और अपने–आपको दिलासा देने के लिए तुम्हारे पास अपने अन्तःकरण की स्वीकृति होती है।

आप श्रमिक हैं

आप समाज में प्रतिष्ठावान हैं, आदरणीय हैं, सम्मान के पात्र हैं, लेकिन घर में, कुटुम्ब में आप न मालिक हैं न कर्ता हैं, आप पालक हैं सबके, सब आप पर आश्रित हैं, तो आप श्रम नहीं करेंगे तो पालन कैसे होगा?आपके श्रम से उनका पालन होता है, आपके श्रम से उनका पालन पोषण होता है अतः आप केवल श्रमिक हैं, प्रतिष्ठित श्रमिक और सब मालिक हैं, आप मालिक नहीं हैं। अब आपसे बालक भी रूठ जाता है, बालिका भी रूठ जाती है, स्त्री भी रूठ जाती है, माँ बाप भी रूठ जाते है याने श्रमिक से सभी रूठते हैं। तो जैसे श्रमिक से आप डांट डपटकर बोल बाल कर सब काम लेते हैं वैसे ही वो लाग कभी हँसकर, कभी लाड़ प्यार से, कभी रूठकर आपसे अपना काम लेते हैं। अतः चुपचाप सबमें हां करना, सबको हां कहना, उत्तर देना नहीं, अगर आप ये इस तरह से समझ ले कि आप श्रमिक हैं तो आपको फिर गुस्सा नहीं आयेगा। मैंने कभी किसी को उल्टा उत्तर दिया नहीं और कभी कार्य अधूरा नहीं किया। मैं श्रमिक रहा, ये उदाहरण इस प्रकार है कि आप निःस्वार्थ करें, आपका स्वभाव, वृति त्यागमय होना चाहिये, यदि नहीं है तो चेरिटी क्या है, चेरिटी माने औरो के लिये लाभ। अगर आप इस प्रकार से नहीं है तो फिर कुटुंब में कलह के सिवाय अशांतता के सिवाय और क्या रह जाता है? आगे चलकर वो सब छूट जायेंगे और आप अपमानित होते रहेंगे। अभी वो ये सब नहीं समझेंगें, परन्तु जब वे अपने पैरों पर खड़े होंगे, तब तुम्हारे ही पैर पकड़ेंगे आकर, कि बाबा उस समय नही समझा, अब हमारी समझ में आ रही बात। क्योंकि अपने पर बीतने से ही समझ में आती है। मैंने अपने पर से कहा, अच्छा लगे तो अच्छा है, नहीं तो अपनी अपनी इच्छा।

गुरूजी स्वयं पर

● 26 जुलाई 1983 को अशोक धर्माधिकारी के यहाँ अमरावती में नाश्ते के बाद पलंग के पास लेट गया फिर धीरे धीरे बेहोश होता चला गया और प्रकाश धीरे से फैलने लगा। फैलते फैलते सकल ब्रम्हांड में वह दिव्य प्रकाश, सारा संसार दिव्य प्रकाश में डूब गया। संसार में कुछ नही रहा, न घर, न द्वार न पैसा, न कौड़ी, न पत्ता, न पेड़, न पशु, न पक्षी, एक दिव्य ज्योति के सिवाय कुछ भी नहीं ओर उसके बीच में मैं। बड़ा आनंद, उस आनंद को, उस प्रकाश का उस ज्योति की सुंदरता का वर्णन मैं नहीं कर सकता हूं। 9 से 12 बजे तक आनन्द मिला।

● अभ्यास इतना करो कि आत्मज्योति के सिवाय कुछ भी नही रहे– यह परमब्रम्ह है, यही अहम ब्रम्हास्मि है। Light of god surrounds me यह सत्य है यह सत है, यह परम् ब्रम्ह है।

● मैं महाप्रलय से 1983 तक तपस्या करता रहा। अब मेरा कार्य हो गया है, अब चिंता नहीं है, चिंता तो हमारी 1938 से समाप्त हुई। सन् 1938 में हम दूसरी बार समाधि में गये, तब से हमारी चिंता दूर हो गई, वरना चिंता थी, मृत्यु कैसे होती है। वह मैंने अनुभव किया, वह नीचे से ऊपर चला और मैं मर गया, गर्दन लटक गई, हाथ पैर लटक गये, श्वास् प्रश्वास् रक्ताभिसरण बन्द हो गया, मैं मर गया।

● मेरे पिताजी मुझे पुरोहिती सिखाना चाहते थे, मैंने नहीं किया। मैं पाखण्ड नही करता हूं, मुझे सब देवी देवता मिले है, जानकी, राम, गुरू वशिष्ठ, हनुमान, लक्ष्मी, शंकर पार्वती, गौरी, दुर्गा गणेश, राधिका, कृष्ण और सन्तों में बहुत मिले हैं। मेरे प्राण निकल गए, मैं 24 घण्टे निष्प्राण रहा, 72 घण्टे निष्प्राण रहा, 5 दिन रात निष्प्राण रहा, 7 दिन निष्प्राण रहा, और फिर जीवित हो गया दुर्ग के घर में तीन दिन निष्प्राण रहा, और फिर जीवित हो गया। डॉक्टर देखकर जाते थे, कहते थे कि चिंता की कोई बात नही है, शरीर में प्राण है, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है, लेकिन क्या बात है मैं नही जानता, इन्हें चाय का पानी, सन्तरे, मौसम्बी का जूस एक एक चम्मच पिलाओं वे पी जायेंगे, ये मरे नही है, जीवित है, यद्यपि होश नही है।

● ये सतगुरू है, ये सत्पुरूष है, ये गुरूजी साधारण नही है, यहाँ बोलता हूँ ऐसा होता है, मैं अपनी मृत्यु 6 बार देखा हूँ, मृत्यु को पार कर गया मैं, सारे हिंदुस्तान में एक भी योगी नही हैं, एक भी सत्पुरूष नही है। जब प्रलय हुआ, तब कुछ भी नहीं था, तब एक सत्य था कृष्ण। और तब मैंने अपने आप को पाया, 9 वें वर्ष में। वो महासमाधि की अवस्था है, मैं दूसरा साल जैसे लगा 4 घण्टा उसी में था, सब इन्द्रियों का कार्य बन्द हो गया, नाड़ी सब बन्द। 4 बजे मेरी हलचल शुरू हुई बाकी हमको होश है, बहुत याद है। ये वराह कल्प है, ये काल गणना है।

भरोसा

सद्गुरु क्या करतें है, तुम्हारा भार ढ़ोता है, वह तुम्हारे नौकर हो जाते है। वह तुम्हारे भरण पोषण के लिये सक्रिय हो जाते हैं। वह तुम्हारे चाकर हो जाते हैं। सतगुरु हो उस पर भार डाल देना। उस पर भरोसा होना। गुरु माने भारी। श्वास है ,जब तक विश्वास होना। निरन्तर जब तक श्वास है, श्वास रहित होने पर एक रास्ता और है वो सुषुम्ना खुल जाता है। जिनको भरोसा है, उनका काम बन जाता है। कैसी भी परिस्थिति आये अभ्यास को नहीं छोड़ना है। भरोसा माने भार डाल देना। स्वयं पर भरोसा या सद्गुरु पर ,दोनों एक है। अनुभव ही तो अमृत है, ज्ञान ही अमृत है। अभ्यास से उसे अनुभव में लाना चाहिए। सत वस्तु माने महाशक्ति। सद् शक्ति को धारण करना, फिर नहीं छोड़ना उसको। अन्तर रहित अभ्यास होना चाहिए। हम अपनी संस्कृति को बिलकुल भूल गए, क्योकि पढ़ाया नहीं जाता। ये साधना जो मिली है, उसे नहीं छोड़ना है। ये विशेष होना चाहिए, अन्तर रहित होना चाहिए। जो काम करो वो भरोसे से करो। आचरण में होना चाहिए। आचरण माने भरोसा। दे दिया माने दे दिया। यहाँ आने के बाद सब तेरा। मेरा वो होता नही, ये होता नही फिर कहाँ?। आदेश का पालन हो, नहीं होता तो घर में बैठो। आपको विषयातीत होना है। आपने अपने कल्याण के लिये दीक्षा लिये हैं, विषयों के लिये नहीं। हेतु रहित जो सेवा करता है, वो साधना है। कोई हेतु नही , कोई अपेक्षा नहीं। मान रहित, संग रहित, मोह रहित, कोई भी हो। सेवा करना। महा शक्ति हम मे भरी पड़ी है, उसको कैसे कार्य में लाना, हम नहीं जानते। सुषुम्ना वो खुल जाता है, ऊपर नीचे वो संचार होता रहता है। आवागमन होते रहता

है। हमारी कृति, हमारी वाणी, हमारे विचार सबके लिये शुभ हों। कल्याण माने विमल, वहां कोई दोष नहीं। महान भय से जो स्वयं मुक्त है,तब जा के सब की वो सेवा करता है। वो अभय है, उसमे दोष है नहीं। गुण ही गुण है। निर्दोष, निर्मल, पारदर्शक। सजनी किसको कहा, जागी ही जगाये, यानि प्रीतम को जगाकर, आयु पर्यन्त वो सोई नहीं। सोई , जिसको वो जगाए, फिर जागी नही, क्योकि शरीर की आयु है। सद्‌गुरु माने सत् से सम्पन्न है, वो ऐसा। आप मानते हैं, जानते कहाँ है? राग ये अपना है, द्वेष ये अपना नहीं है। ये महा क्लेश है, ये अंधकार है। ये शक्ति प्राप्त होने पर सब दोष दूर होकर, निरोध होकर , अपने अपने स्थान चले जाते हैं, गुण हो जाते हैं। अज्ञान, अंधकार ये दूर हो जाते हैं। जिसकी सुषुम्ना खुल गई है, जो निरपेक्ष वृति से सेवा करता रहता है, वो साधु है। कुल माने, कुण्डिलिनी, अनन्त शक्ति,महा शक्ति।

जानो

लेकिन उसके हम में होते हुए दुर्गति दूर क्यों नही हो रही है? क्योंकि हम अपनी शक्ति को नहीं जानते, हम अपने आपको नहीं जानते, नहीं पहचानते। इसलिए अपने आपको जानो, अपने आपको समझो, अपने आपको देखो। अपने आपको जान कर सारी दुनियाँ को जान जाओगे। अभी हम केवल दुनियाँ को जानते है, अपने आपको छोड़कर।

जाग्रत माने जागो, छोड़ो बिस्तर, उठो, सत्पुरुष को प्राप्त कर, जब तक वो शक्ति आपको प्राप्त नही होती, तब तक उसे छोड़ना नहीँ चाहिए। याने आत्मबोध नहीं हो जाता, तब तक नही छोड़ना है। साधना हम कैसे करें, अभ्यास कैसे करें, ताकि समय समय पर जो विघ्न बाधायें उत्पन्न होती है,वो सब दूर हों। तीनों बाधायें दैविक, दैहिक, और भौतिक,ये भी आपसे दूर होंगी। तो यज्ञ करना है, वो है आत्मयज्ञ। ये सब सत गुरु के द्वारा प्राप्त होता है। उनके आदेशों का पालन हो, पर शंका, संदेह नहीं होनी चाहिए। इसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा माने एक बार आपने धारण कर लिया तो धारण कर लिया। एक बार वरण कर लिया,तो कर लिया। अपने आपको जानने के कर्तव्य से विमुख क्यों होते हैं?अपने सम्मुख क्यों नही हो जाते ?

ज्ञेय वस्तुएं है, संसार प्रपंच है, ये नाशवान है। परिवर्तनीय। वो ज्ञाता है, जिसको कास्मिक एनर्जी , डिवाइन एनर्जी, दिव्य, दिव्य शक्ति कहते है। वो ही महाशक्ति है। वहाँ पहुँचने पर इसी शरीर में होता है, वो पद। वही परम पद है। तब जाकर वो स्थिर होता है, इसको चरित्र कहते है। ब्रम्ह तत्व में जिसका मन, बुद्धि लीन हो गया है वो ब्रम्हचारी है। हम इस व्रत को ब्रम्हचर्य व्रत कहते है। हमारी प्रकृति जो है केवल विकृति के सिवाय कुछ नहीं है। जब तक हम बहिर्मुखी हैं, अंतर्मुखी नही हो पाये हैं, तब तक हम विकार ग्रस्त हैं और अभाव के सिवाय कुछ भी नही है।

विश्वास

जब तक मैं करता हूँ, ये रहता है, तब तक कुछ भी नही मिलता। मन में रखना कि ये सब गुरूजी का है, हम तो भाई एक सेवक हैं, लेना देना उनका काम है। तुम्हीं करोगे और तुम्हीं सब कुछ हो, ऐसा बोझ उन पर डालकर के दृढ़ निश्चय, भरोसे और पूर्ण श्रद्धा के साथ बैठना (रहना)

है। गुरूजी के सामने रोते क्यों नहीं? जरूरत पड़े तो वहीं अँधेरे में अकेले में झगड़ा करो, आपका ये लोक और परलोक दोनों सिद्ध हो जाता है। जिस दिन वो निर्भर हो गया संसार के प्रपंच से, सुख दुःख से, पुर्नजन्म से, तत्काल वो मुक्त हो गया। सारा संसार गुरूजी का है। आपको विश्वास है (गुरूजी पर) तो सब जगह आनन्द है। ये गुण (अभ्यास से) जैसे जैसे बढ़ते जायेंगे, तो आपका दोष है, अभाव है, वो दूर होते जायेगा। आपकी शुभकामनाएं जो नहीं बनतीं जो लोग विघ्न उत्पन्न करते है या ऐसी इच्छा रखते हैं, ये सब अनुकूल हो जाते हैं। इतनी ताकत है, क्लीं बीज में, वो पूर्ण काम है। यही गृहस्थाश्रम से मोक्ष (आत्म साक्षात्कार) तक सहायक है। क्लीं जो है। जब आप अनाहत चक्र में आते है तब तुम्हारी कामनाएं दुनियां के कल्याण के लिए होंगी। क्रोध होगा दूसरों को रास्ता पर लाने के लिए, मद होगा तो अपनी संस्कृति का होगा, लोभ होगा ताकि सबका कल्याण हो, मोह होगा ताकि हम सबके काम में आए। हमारे पास जो कुछ है सबके काम आ जाये। मत्सर, पहले दूसरों को गिराने का था, अब उनको उठाओ, सबको अपने जैसा उठाओ, ये छै विकार मानो मालिन्य बदल कर, दूर हो जाते है। ईश्वर के पास पहुँचने के जो ईश्वरीय तत्व हैं उन्हें धर्म कहते है। धर्म उसे तब कहते है जब उसकी गति अखंड हो जाये।

सुषुप्ति में चले जाए तो भी मन के कार्य चलते ही रहते है, ये मन कभी बन्द नहीं होता। सत्पुरुष के कृपा के बिना ये मन वश में नही आता।

जब तक तुम अपने आत्मा पर भरोसा नहीं करोगे, जब तक आत्मा जो सर्वज्ञ है, पर भरोसा नहीं होगा, तब तक तुम मारे मारे फिरोगे, कुछ भी हाथ में नहीं आएगा। चाहे तुम कितना ही सेक्रिफाइस करो, कितना ही बांटो, स्वर्ग नर्क के सिवाय छुटकारा नहीं। तुम समर्थ हो नहीं सकते, तुम्हारा अभाव दूर हो नहीं सकता। सरल सहज आत्मोद्धार है, राग द्वेष की निवृति से प्राप्त होने वाला स्वरूप। इस शरीर में अग्नि प्रसुप्त है, जला देने पर चारों तरफ प्रकाश ही प्रकाश है। आत्म ज्योति वो ज्ञानचक्षु वो अखण्ड हो जाय। आत्मा स्वयं ज्योतिर्भवति यही परमपद है। यह सम्यक्चरित्र है। वो दिखे या ना दिखे, काम (प्रत्येक कार्य, भौतिकीय, आत्मिक) बने या न बने, हम वो नहीँ जानते, वो साक्षी है बस। वो जिसका कार्य है, सफलता विफलता उसकी है। अपने को क्या, हम तो निमित्त है। वो ही कर्ताधर्ता है, इसलिए तुम अपने ऊपर मत लो। यही लिब्रेशन है। यही सबसे उत्तम अवस्था है। मोह का उल्टा है होम, माने आहुति देना। सर्व स्व समर्पण कर देना अपनी ताकत से और करके (भूल जाना) वो भूल जाए। काम बन जाए तो सब ठीक है। न काम बने तो सब टेढ़ा, जिसको देखो वो टेढ़ा है। ये अपने शुभाशुभ कर्मो का फल है। उस मन्त्र पर अपने आप को निर्भर करके, कार्य के आरम्भ, मध्य, अंत में जहाँ तहाँ, आना जाना करते हुए। तो आपका कार्य अवश्य होगा। आप में जो बल (आत्मिक) है, विश्वास है, ये गुण अवश्य प्रकट होंगे। संशय, अविश्वास, शंका आदि दोष दूर हो करके शांति, आनन्द अवश्य आएगी। निर्विघ्न, कष्टरहित भोग भोगते हुए, परमधाम जो आत्मा है, शनैःशनैः पहुँच जाते हैं। आप अभी भी मुक्त हैं आगे भी मुक्त है। माफ करना, ये वाणी से समझाया जा नहीं सकता।

वेदांत और व्यवहार

संसार, वेदांत और व्यवहार का ही ताना बाना है, इसमें रहकर ही साधन रत रहना है। आत्म साक्षात्कार रूपी ज्ञान ही सभी के लिये अनिवार्य और स्वाभाविक है। 5 या 10 मिनट इसके लिये पर्याप्त है। इतने से भी, साधक अपने आपको सम्भाल लेता है यक्ति यदि चाहे तभी यह विद्या प्राप्त होती है। दुष्ट प्रवृतियों से बचते हुए, विद्या को सीखते, संग्रह करते हुए आगे बढ़ते हैं। क्या अच्छा बुरा है, इसे निर्णय करते समय साधक को सदैव सतर्क रहना चाहिए। हमारे लिये वेदांत और व्यवहार दोनों में कोई अंतर नही है। अंतर केवल अपने को नियंत्रित करने में, जीवन क्षेत्र में अमल करने में है। व्यक्ति आज व्यवहार में कमजोर होता चला जा रहा है। दूसरे को कच्चा, अपने को पक्का बताने की अपेक्षा विद्या से , कला से, उनके जानने वालों से प्रेम करें। जीवन में फुर्सत नहीं है ऐसा कहने के साथ साथ, आत्म विद्या से आत्मा रूपी सूर्य से दूर चले जाते है। हमारा ज्ञान बना रहे सदैव तत्पर रहें (आत्म विद्या हेतु)। सब पिछले जन्म के साहूकार हैं अपना अपना वसूलने आये हैं। सेवा क्या कोई किसी की कर सकेगा? व्यक्ति अपने जन्म जन्मांतरों में बोये हुए को ही काटता है। भविष्य का बनना पूर्व जन्मों के देने पाने पर निर्भर है। केवल ऋण चुकाने ही नहीं, आत्म देव को प्रसन्न करने के लिये , हमने जन्म पाया है। वह अनन्त सूर्यो का सूर्य है। इस आत्म देव से बढ़कर कोई (देव) नही है। दान पुण्य भी भोग है। भूल में न रहें कि हम दान पुण्य करते है, अतः हमारे भोग चले जायेंगे। चिन्ता मुक्त होइये। सद्‌गुरु के ऊपर सब कुछ छोड़ दीजिए अर्थात कर्तापन का अहम भी। आत्म प्रेरणा से आगे बढ़ना चाहिए। ऐसा करने से साधक लौकिक और अलौकिक क्षेत्र में निष्णात होता चला जाता है। भय से दूर होकर निर्भय हो जाता है। आहुति, जैसे कामिनी कांचन में बलि चढ़ा देते है वैसे ही अपने आपको जानने के लिये बलि चढ़ा देना चाहिए। अपने आप को बढ़िया समझो न, धर्मात्मा समझो, पुण्यात्मा समझो। वो सब जगह है, तो हमारे में भी है। सबका भला करते हुए सबके सहायक बने रहे। आत्म ज्ञान हो जाने पर साधक आत्मा की जो वाणी सुनता है, वही करता है। आत्मा ही सबसे प्रिय हो जाता है। ये सांसारिक कार्य और उनसे सम्बंधित चिंताए दूर हो जाती हैं।

जिसका मन ,बुद्धि उस परमात्मा पर, परम सागर पर , महासागर में लीन है, क्या कहना पड़ता है। मस्त रहते है, जहाँ मस्ती है, मस्तानों की...। कुछ दुःख दिया तो ईश्वर ने दिया, बन गया तो मैंने किया। बिगड़ गया तो ईश्वर ने किया। दे बत्ती, ईश्वर कितना गरीब है, दे बत्ती। अपमान सहन करने के लिये तो हम इस जग में आये हैं, बहुत दिनों के बाद ये समझ में आता है। और समझ के वैसा रहना हो जाये, तो क्या कहना पड़ता है। आनन्द, सत्‌चिदानन्द। ऐसी प्यास दो, महासागर प्यास, पीते जाओ, पीते जाओ, वो कभी न बुझे और कभी नहीं बुझने का है। और अगर प्यास बुझ गई, तो वो प्यासा भी नहीं, यानी और प्यास (प्रेम, आनन्द) बढ़ें। जहाँ सत (सत्ता, सत्य, आदि से है, अभी है, आगे रहेगा, सनातन, जगत जिससे संचालित है) है, वहीं भाव (सत का बोध) है। और जहाँ भाव (होना, वर्तमान, दिव्य अस्तित्व) है, वहाँ सत है। अन्यथा सब अभाव है। मनुष्य

अपने कर्मों को, चरित्र को, घटनाओं को गुरु दिशमार्ग से नियंत्रित करने में समर्थ है। मनुष्य का जन्म और पुनर्जन्म उसकी इच्छा पर निर्भर है। सत गुरु की कृपा से अपने आप लौकिक और अलौकिक लाभ , प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मिलता है। आप बराबर मल रहित हो जायेंगे, केवल अभ्यास करना है। जो रास्ता आपको बताया गया है, ऐसा ऐसा ध्यान में लाना है और बस चुप हो जाओ। ये कुरु नहीं है, ये भव है, भव माने अपने आप होता है। विचारों का उदय अस्त होना बन्द हो जाता है, तभी एकाग्रता होती है। एकाग्रता माने एक के सिवाय कुछ भी न रहे। अपने आपको जानने की साधना है, इसी को पुरुषार्थ कहा गया है। मन का संयम करो, इन्द्रिय निरोध करो। ज्ञात रूप से देखना, सुनना आदि इन्द्रिय व्यापार बन्द हो। देह की सहायता से इस हेतु ऐसा अभ्यास करो। प्रत्यक्षानुभूति होने पर साधक धर्म, अधर्म आदि सभी प्रकार के द्वन्दों से परे चला जाता है। निष्काम व्यक्ति ही आत्मा का दर्शन करते हैं।

तुम घर बैठो और अन्तः के भीतर ही उपनिषदों के तत्वों की खोज करो, तुम सभी ग्रंथों में श्रेष्ठ ग्रन्थ हो। जब तक उस अंतर्यामी गुरु का प्रकाश नहीं होता, बाह्य उपदेश व्यर्थ है। हमारी इच्छा शक्ति ही यथार्थ नियन्ता है। अज्ञ के लिये बंधक विज्ञ के लिये मुक्ति दा। सभी प्रकार की इच्छा शक्ति को प्रणाली बद्ध योग (भक्ति योग,कर्म योग, राज योग, ज्ञान योग) से दृढ़ किया जाना चाहिए। वासनाओं का बीज अहम है। पुण्य पाप के बीज वासना है। ये अहम भोगवाता है, अनेक जन्म में जाता है,अहम यदि आ गया साधक में तो वह गिरता चला जायेगा। अहम भाव जब समाप्त होता है, तब निर्बीज समाधि होती है। उसका शरीर ज्योर्तिमय होता है। जब तक एक भी संस्कार बाकी है, उसे जन्म लेना पड़ेगा भोगने के लिए। आत्मा से ही सब कार्य हो रहा है,आत्मा ही तुम हो,खाली अपना कचरा साफ करना है। गुरु कृपा पर दृढ़ विश्वास श्रद्धा अचल रखना,यही शिष्य का कार्य है। शिष्य में केवल सतगुरु ही आध्यात्मिक शक्ति का संचार करते है। आनन्द, शांति, चैतन्य ज्योति प्रस्फुटित होती है, यही ज्ञानचक्षु का उन्मीलन है। गुरु सहायता के बिना काम की प्रबलता उतपन्न होती है। कर्म में अनासक्त होकर निरंतर ही, वासना रूपी पेड़ को अनासक्ति रूपी कुठार से काट डालो।

समर्पण

उसी दिन से मुक्त हो गया वो जिस दिन से समर्पित हो गया। शरण में गए माने तन, मन, धन सब समर्पित हो गए। अरे आप तो सुख के राशि हैं। लेकिन नहीं, हम तो दुखी हैं, हम तो पापी हैं, हम यू हैं, हम मृत्यु हैं, क्या है ये सब? इसका कारण ये है, कि हम अपने आपको, संस्कृति को, हम अपने गोत्र को, मूल पुरुष को भूल गए हैं। खाली मैं मेरा, तैं तेरा, मैं और तू , अगर भूल गये तो आप महान हैं, और आप पक्के धर्मात्मा हैं। वरना धर्मात्मा नाम के है, विष से वेश बना है, वेश बना लो, वो(विष से) साफ हो जायेगा। एक शब्द भी अनुभव में नहीं आया, केवल गप्पा मारते हैं, जरा भी संकोच नहीं आता कि हम क्या करते हैं। तू ही तू है। सब जगह एक और अनेक, सब तू ही तो है, बहुत कठिन है। और किसके शरण में जायें, अरे हम अपनी शरण में आते हैं। वही महाशक्ति

है,वही कुण्डिलिनी है, वही सर्वत्र है, वही आत्मा है,वही आप है। पहले दिल साफ करो, फिर आईने साफ करो,खाक खुदी से उनकी सूरत या अपनी सूरत दिखाई नही देती है। दुनिया से उऋण होना है, छुटकारा पाना है। तो बका की गर तमन्ना है, तू हस्ती से गुजर पहले, यही होता है वस्ल उस का तू जीते जी मर पहले। इसके बिना नहीं होता है, नहीं होता है, नहीं होता है। दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। शब्दों के द्वारा ये जाना नहीं जा सकता। यहाँ शब्द का काम तो है ही नहीं। यहाँ अभ्यास, अभ्यास, अभ्यास, एक तत्व के अभ्यास के बिना निरोध नहीं होता। हद तक पहुँचा दे, हद से अन हद होना है। तब खुदा बन्दा से पूछता है, बता तेरी रजा क्या है। बाकी हाथी के दाँत खाने के कुछ और दिखाने के कुछ और हैं। तुम्हारे पास अखण्ड शक्ति का भण्डार पड़ा हुआ है, उसको प्रयोग करने हेतु मानव शरीर मिला हुआ है। मानव शरीर के अंतर्गत स्वर्ण सन्धि प्राप्त हुआ है। वो है अन्तः करण। मन,बुद्धि, चित्त और अहम। वही सर्वज्ञ बीज है,वही ब्रम्ह बीज है। अगर समझ में आया तो वही सर्वज्ञता के लक्षण है। वही सर्वज्ञ बीज है।

प्रत्येक में ब्रम्ह का दर्शन करो, जड़ हो या चेतन। सर्वदा अभ्यास के द्वारा मन को अनन्त भाव में भावित करते रहो।निष्काम व्यक्ति ही आत्मा का दर्शन कर सकते है। व्यक्ति माने अभिव्यक्ति,आत्मा की अभिव्यक्ति। यह भाव वाचक है। यह जग उस सत्ता से ओत प्रोत है,यही प्रेम है। तब शुद्ध प्रेम होता है। छठी भूमिका (आज्ञाचक्र) से ऊपर जाने परध्का दर्शन होने लगता है। तब निर्वासनिक प्रेम का उदय होता है। प्रत्याहार माने दुनियादारी से, विकारों रूपी अवरोध से, मन को हटाना है। अपने आपको भूल जाने का नाम वैराग्य है। सद्गुरु पर अधिक से अधिक विश्वास करो। सद्गुरु के प्रति श्रद्धा से सब प्रकार के संशयों का नाश होकर लक्ष्य की प्राप्ति होती है। अनात्मचिंतन में संशय अधार्मिकता है, शंका, संशय को फटकने न दो, फील एंड रियलाइज कि हम सच्चिदानन्द हैं। अंतर्मुख होने पर सब में स्वस्वरूप दिखता है या देखता है। जब वह और मैं, में भेद न ही रह जाता, तब मैं हूँ। अभी तक जिसे तू कहता है, वह भी मैं हूँ। जब ऐसी एक वृति रह जाती है आत्म साक्षात्कार सुलभ हो जाता है। निर्लिप्त बहुरूपिया बन कर कामकर,साक्षी भाव में रहना है। निर्विचार होने का अभ्यास करो, ब्रम्हानंद अपने आप मिलेगा। पाँचो ज्ञानेन्द्रिय, तन, मन, बुद्धि सहित चेष्टा रहित हो जाए तो यही ब्राम्ही स्थिति है।

मैं वही हूँ

उस परम तत्व की ओर, जहाँ से आये हो, उन्मुख रहो। अनासक्त होकर अंदर से प्राप्ति की इच्छा रखने पर दर्शन सुलभ हो जाता है।जब ईश्वर का सानिध्य सब में सर्वत्र महसूस होने लेने लगे, हर जगह उसका आभास हो, वही ज्ञान है। तब सभी वस्तुएं सजीव मालूम होने लगती है। मैं ही वही हूँ, सब में बोध होने लगता है। हर क्षण उसका मन स्वरूप चिंतन में लगा रहता है। आप अपनी धारणा को जिस रूप (अवस्था) में रखोगे वैसा ही काम होगा। किसी बात की चिंता मत करो,सब गुरूजी को अर्पित कर आनन्द में रहो। देह की,ना ही घर की, धन की, ना ही सदस्यों की चिंता करें। फिर देखिये कैसी मस्ती आती है। किसी समस्या के आने पर समाधान हेतु गुरूजी

को सौपकर, उनके ऊपर डालकर आप पुनः निश्चिन्त होकर अपने रंग में डूब जाए। किसी प्रकार की चिंता करें ही नहीं, तभी समाधि की ओर क्रमशः अग्रसर रहोगे। मौन स्थिति आने पर साधक निंदा स्तुति से दूर रह सकता है। मान अपमान आते जाते रहते हैं, पैसा कोई ऐसा नही कि जिसके पीछे हम भागते फिरे। साधक को ऐसी सब बातें अपने आप समझ में आने लगती है। कब?निरन्तर अभ्यास करने पर। आप स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। स्वरूप का चिंतन करें। आपके चारो ओर आनन्द ही आनन्द है। उसे रियलाइज करे, रसास्वादन लेने में तल्लीन हो जाये।

स्वयं को खोजना ही भक्ति है, ज्ञान है। ज्ञान में डुबकी लगाकर ही कुछ हासिल होता है। आत्मा ही दैविक है,मन अत्यधिक शक्तिशाली हो जाता है तथा सभी घटनाये वैसे ही घटती है,जैसे आप चाहते है। किसी से द्वेष न हो न ममत्व, क्योंकि ये सब दिखाने के लिये हैं। आप अकेले आये हैं और अकेले जायेंगे और जाना ही पड़ेगा। अपना काम है सहन करना। उल्टा उसका हित शरीर,वाणी,मन से पहुँचायें। अहम किस बात का जब तुम्हारी अगली श्वास ही तुम्हारे वश में नहीं। जिसे शरीर का, धन, मान का भय हो उसे कभी आनन्द प्राप्त हो ही नहीं सकता। आत्मा के साथ एकात्मता रखना सब से बड़ा एवं प्रभावशाली भजन है। इसी क्रिया से अहंकार जाता है। कर्तापन से दूर हुए कि स्व भाव स्वयं होने लगता है। वस्तु बनी हुई है,वह हमीं तो है। उसे वस्तु न समझ कर आत्मा समझने पर उसका प्रभाव मन पर नहीं पड़ता है। दृष्टा न रहा तो फिर दर्शन के रहने का प्रश्न ही नहीं रहा। ऐसा अभ्यास आप को करना है। आपको गुण रहित होना है, चिंतन रहित स्थिति को प्राप्त करना है। गुरु और ब्रम्ह में एकात्मता विकसित होना ही एकनिष्ठता है।

सत्‌गुरु की महिमा

जिसका मैं ध्यान करता हूँ मनन करता हूँ वह मैं ही हो जाता हूँ। श्रद्धा या सत्य का जिसने ध्यान किया वह परमात्मा को, आत्म सत्ता को प्राप्त कर लेता है। आत्म सत्ता को जिसने धारण किया, वह वही हो जाता है। तुष्टि माने जिसे प्राप्त होने पर सब तुष्ट हो जाता है। ये सन्तोष धन है, जो आवे सन्तोष धन, सब धन धूल समान। जैसा आपको बताया गया है,उस प्रकार से स्मरण कर (बुद्धि को पीछे सत कार्य में लगाकर) जैसा सिखाया गया है वैसा अभ्यास करना चाहिये तब आप निर्भय हो जायेंगे। जीवन पूर्ण हो जायेगा। जिसका कोई रंग, रूप नहीं, आकृति नहीं। जो अनादि और अनन्त है,वही सबका गुरु है। आत्मानुसंधान हेतु किये जाने वाला कर्म ही निष्काम कर्म है। नित्य माने अनब्रेकेबल तब निष्काम कर्म अखण्ड हो जाता है। तब उसे कोई संशय नही, नकोई कार्य। निष्काम कार्य में जब आप रत होंगे तब प्रकृति उसकी पूर्ण व्यवस्था, यथासम्भव यधा समय,आवश्यकतानुसार करती है। या करा देती है। निष्काम कर्म है इससे क्या होता है? ये आधिदैविक, आधिभौतिक, आधिदैहिक, ये जो तीनों ताप हैं, दूर हो जाते हैं। आत्मा की शक्ति सुषुम्ना में खेलती रहती है। आत्मा का गुण ऊपर की ओर जाना है। सुषुम्ना में घुस कर मृत्यु को पारकर, आज्ञा चक्र में प्राण को स्थापित कर देने पर दिव्यत्व (सत)को प्राप्त होकर,भूत भविष्य का ज्ञान हो जाता है। वो कालजित हो जाता है। गुरुकृपा से सुषुम्ना खुल जाना चाहिये,यह

सुषुम्ना मार्ग से प्राण को ले जाकर जब ऊपर ऊपर सब जगह पहुँचा देते हैं। तब होता है। उस मार्ग में गमनागमन होना चाहिये,तब केन्द्रों में सोई हुई शक्तियां विकसित होने लगती है। विकसित होकर बाहर निकलने लगती हैं। तब आप शक्तिमान हो जाते हैं, सारे कार्य आपके होने लगते हैं। यह सब मुफ्त में नहीं होता। इस शरीर को स्वर्णमयी कहा गया है। नहीं तो बेकार है, कचरा है, अगर सुषुम्ना को खोलकर ऊपर नही आये तो। पीनियल बॉडी में प्रवेश होते ही बुद्धि आत्मस्थ हो जाती है। आज जो नाक के द्वारा साँस लेते हो उसे सुषुम्ना द्वारा लेना है। यह अभ्यास है, गुप्त है। उस रस को ही ऊपर ले जाकर फैलाना है।

अहिंसा सत्य आस्तेय ब्रम्हचर्य अपरिग्रह में रहना ही संयम है। संयम ही ब्रम्ह है। जब तक सत्पुरुष मिला न हीं उस परमात्मा (साक्षात्कार) को कोई भी प्राप्त न कर सका। ये है सतगुरु की महिमा। जिस दिन से दीक्षा ली गुरु चरणों की पूजा की,उसी दिन से मुक्त हैं आप। इससे बढ़कर ब्रम्ह वेत्ता कोई भी नहीं है, दुनिया में। ये जो बोल रहा हूँ। निरपेक्ष भाव से कर्तव्य करिये। न कोई स्त्री है,न पुरुष है, न बेटा है,न बेटी है,न कोई ऊँच, न कोई नीच, सब आत्मा ये है। न कोई भेद,न कोई बन्धन, ऐसी धारणा ही समत्व योग कहलाती है। समत्व योग उच्चयेत। यही आज्ञा चक्र है। छठी भूमिका की अनुभूति है। यहाँ पहुँचकर मनुष्य सदा के लिए निर्मल हो जाता है, मल रहित हो जाता है। ये शुचि ही पवित्र होना है, तभी व्यक्ति आत्मस्थ होता है। जितने भी नाते रिश्ते है उनके साथ व्यवहार की भूमिका जो मिली है, निर्वाह तो करना ही है, बिना निर्वाह के निवृति कैसे होगी। मत कहिये,ये सब मेरे नहीँ है। वैज्ञानिक जिसे मस्तिष्क या ब्रेन कहते है, वही कल्पतरु है। जिनकी सुषुम्ना खुल गई है, वह जानिए कि वैतरणी तर गए, उसकी तीन पीढ़ी तर गई। एक तत्व के अभ्यास से पाँचो तत्व विशुद्ध हो जाते हैं, निरोध होता है,यही सूक्ष्म शरीर है। गुरूजी के चरणों का ध्यान करते करते मणिवत, स्फटिकमणि के समान दसों नख हो जाते है, तब ग्रंथि,संशय दूर हो जाते है। आपको स्थायी होना है,सेल्फ पर होना है, उसमें बने रहने से तो भविष्य कभी नहीं आता। और जो कार्य आप करते हैं, उसका डर नहीं होगा। बनेगा कि नहीं बनेगा, बनेगा कि नहीं बनेगा, ये सब चला जाता है। इस मार्ग में (आने पर) भोग समाप्त होने पर ,शरीर जब पार्थिव होता है,तो साधक दिव्य मार्ग,ज्योति मार्ग से जायेंगे।

केवल दिया जलाओ

अपना जो शरीर है, वो देवालय है, ये देव इसी के अंदर है, ये देव ही तो बोल रहा है, और कौन बोल रहा है। ये देव ये शक्ति क्यों प्राप्त नहीं होती है, क्योंकि हमारा जो व्यवहार है, वह कामना से गंदा हो गया है, क्रोध और लोभ से सारी गंदगी फैल गयी है, मोह से गंदा होता चला गया, अभिमान, अहंकार है उससे और गंदा हो गया। बिना कारण सबसे जलना ये कैसे जायेगा? सिर्फ दिया जलाने की देरी है, जिससे ये दोष धीरे धीरे भाग जाते है, जलने के बाद ये बुझता नहीं है, फिर चाहे विषय रूपी ब्यारी, हवा या तूफान कितना भी लगे, ये बना ही रहता है। लव मात्र भी अगर ज्योति दर्शन हो जाय, प्रत्यवाय नहीं है, अर्थात वो घटता नहीं है, बढ़ता चला जाता है, कोई

आपके अंदर से बोलता है, रोकता है, सचेत करेगा देखो ये ठीक है, ये ठीक नहीं है, इससे बचो। अपना उद्धार करने की पद्धति, जिससे आप लोग अभ्यास करते है, और ज्योति दर्शन हो रहा है, इस ज्योति को हमने धर्म कहा है। जब से आप दर्शन करते हैं, उस घड़ी से किये गये कर्मो का प्रारब्ध नहीं बनता है, अभी पाप पुण्य जो आप कर रहे हैं, वो फिर से नहीं बनता कितनी अच्छी बात है। ये आचरण सुधारने से होता है, अल्प से अल्प का भी दर्शन होता रहे तो जन्म मरण के महान भय से आपको तार देता है।

कृष्ण ने कहा है, अखण्ड रूप से मेरे चिंतन में रात दिन लगा हुआ है, डूब गया है, पगला गया है, उसका रखवाला मैं हूँ, इससे बढ़कर और क्या आश्वासन चाहिए? इस शरीर से जायेंगे तो अचिरादि मार्ग से जायेंगे एकाध बार भले ही आ जाओ ये मैं नहीं कह सकता, लेकिन फिर से माँ के पेट में नही आएंगे महिला हो तो सिद्धा होगी पुरूष हो तो सिद्ध होगा।

हमें दूसरों के गुण ग्रहण करना चाहिये और दोष त्याग देना चाहिये लेकिन दोष तो पहले ही दीखता है, सारा आचरण आपका समाप्त हो गया अगर घृणा नहीं गई। घृणा जाती है ये अभ्यास से होता है, ये स्टेटस है।

● योग से बुद्धि समर्थ होती है, अर्थात सब का बोध होता है।

● ज्ञानी वह है, जो आत्म ज्ञान से सम्पन्न हो एवम् समाज कल्याण हेतु प्रस्तुत रहे, जागृति, स्वपनवस्था, देह, तुरीयावस्था इन सब में स्वाभविक रूप से, समाज के कल्याण हेतु समर्पित है, वही ज्ञानी है, वही धर्मात्मा है, वही कह सकता है कि वह धर्म को जानता है।

● Above time & Space की अवस्था होती है, यह बिना सतगुरु के प्राप्त नहीं होता, साधना का अमृत पीओ और उसे पचाओ, परन्तु गिरो मत।

● सुषुम्ना खुलने के बाद फिर कर्म फल नही बनता, आगे बढ़ना है गिरना नहीं है, जब एक भी संस्कार नही रह जाते, बुद्धि प्रकृति में एवम् पुरुष में लीन हो जाती है, यही मोक्ष है।

सही पढ़ाई

आज हमारे माँ बाप कहते है, कि तुम पढ़ो यही तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है, पढ़ो नहीं तो तुम्हारा कोई ठिकाना नही। मैं आपके सामने हूँ, मैंने 9 वर्ष की आयु में पढ़ना छोड़ दिया, पिताजी को कह दिया कि मैं विद्या नहीं पढ़ना चाहता, इससे शरीर बेचना पड़ेगा। सत्य कहता हूँ, मेरा ये जन्म से है, इस आत्मबोध के लिए मुझे कोई गुरु नहीं मिला, बहुत फिरा हूँ मैं, बहुत व्रत किये मैंने, जिसने जो कहा जैसा कहा वैसा किया हमने। जो व्यक्ति अपने से विमुख है, तो वो किसके अनुकूल होगा, आज एक व्यक्ति दूसरे पर भरोसा विश्वास नहीं करता। इससे घर घर में व्यक्ति व्यक्ति में फूट है। हमारी जो शक्ति है, जो राजविद्या है, उसे भूल गए हैं हम, यही कारण है। हर माता पिता यही चाहते है, कि सन्तान हमारी सेवा करे, वन्दना करे, तो आप वो विद्या सिखाइये न, आपकी सेवा करेंगे, वन्दना करेंगे, सब कुछ करेंगे। आप दुःख में जी रहे हैं, निरंतर अपने बच्चों को दुःख में शामिल कर रहे हैं, बड़े हुए तो भगवान, भगवान किया तो फिर ये कैसे मिलेगा, न निकलने

की कोशिश करते है आप, और अपने बच्चों को उसी दुःख वाले गढ्ढे में डाल रहे हैं। आज ऐसा व्यवहार घर घर में हैं, ये अनुशासनहीनता है, याने शिक्षण बराबर नही हैं। आज क्या है, ऊपर से नीचे तक एक ही चीज मिलती है, वो है दुर्गति। ये तभी जा सकती है, जब प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को जाने, समझे तब चरित्र का निर्माण होता है, वर्ना चरित्र एक पुस्तकीय नाम मात्र है।

चरित्र का अर्थ होता है, धर्मम् चर, सत्यम् वद। सत्य बोलो, धर्म से चलो, धर्म माने आत्मा, आत्मसाक्षात्कार यही धर्म है आपका, तब वो धर्मात्मा होता है, औरो को भी अपने जैसे तैयार कर सकता है, आचरण में लाओ तब अपना, समाज का, राष्ट्र का भी तरण तारण होता है।

नमस्कार, नमस्कार, प्रणाम, प्रणाम, साष्टांग प्रणाम, इतने से काम नहीं होता है। इस प्रकार योग,आत्मयोग, से ही चरित्र निर्माण होता है, नई शक्ति, नया उत्साह मिलता है। अपना कल्याण, और राष्ट्र का कल्याण सम्भव है, ऐसा मेरा मत है।

सही अभ्यास

कृष्ण को योगेश्वर कहा, प्रत्येक शब्द उसका योग है, कृष्ण के जैसे एक भी सारे संसार में नहीं हुआ है। लेकिन आदर्श को एक एक शब्द को भूल गए, एक शब्द भी अनुभव में नहीं आया, केवल गप्पा मारते हैं, जरा भी संकोच नहीं आता कि हम क्या करते हैं। हमारी संस्कृति को, बाहर के लोग आते है, और लेक्चर देकर चले जाते हैं कि तुम्हारी विद्‌या तुमको सिखाने आये है, हाँ ये सत्य है, कुछ तो भी बोलकर कुछ तो भी करते है। तू ही तू है, सब जगह एक और अनेक सब तू ही तो है, बहुत कठिन है। और किसके शरण में जायें, अरे हम अपनी शरण में आते हैं, पराधीन सपनेहु सुख नाहीं, वही महाशक्ति है, वही कुण्डलिनी है, वही आत्मा है, वही सर्वत्र है, वही आप हैं।

जब तक ये कार्य ये प्रक्रिया सत्पुरूष के द्वारा न मिले, षट् चक्र भेदन जब तक नही हो पाता, तब तक आपको सैकड़ों करोड़ों जन्मों का भोग भोगना ही होगा, उसके बिना छुटकारा नहीं, जब तक ये ग्रन्थियां भेदन न हो, जब तक तुम षष्टम भूमिका में पहुचते नहीं, तब तक आनंद नहीं, आनंद नहीं। दुनिया से बेबाक होना है, उऋण होना है, छुटकारा पाना है, तो बका की गर तमन्ना है, तू हस्ती से गुजर पहले यही होता है, वस्ल उसका तू जीते जी मर पहले। इसके बिना नहीं होता है, नही होता है, नही होता है, दूसरा कोई रास्ता नहीं है। पहले दिल साफ करो, फिर आईने ऐ साफ करो, खाक खुदी से उनकी सूरत या अपनी सूरत दिखाई नहीं देती है। गाया करो, लेक्चर बाजी किया करो, पोथी पढ़ा करो, दस दिए के माला फेरा करो लेकिन जब तक, ऊ,ऊ,ऊ...ये अवस्था है, शब्दों के द्वारा ये जाना नहीं जा सकता, वहाँ अभ्यास, अभ्यास, अभ्यास, एक तत्व के अभ्यास के बिना निरोध नहीं होता, जब तक तो आप जहाँ हैं, वहीं है, ठीक है, आनन्द है, आनंद है। लेकिन ये अवस्था प्राप्त करनी पड़ती है।

फल देने वाला वो है, तो कार्य से हम वर्कर है, जो वर्कर होता है, वो स्वयं सफल विफल नहीं है। जिसका काम है, सफलता विफलता उसकी है, ये समझ करके अपना जीवन यापन करना चाहिये। वो सब देखता है, वो सब समझता है, वो सब जानता है, वो दिखे या न दिखे, मिले न मिले,

काम बने या न बने हम वो नहीं जानते, वो साक्षी है, बस। वो जिसका कार्य है, सफलता विफलता उसकी है, अपने को क्या, हम तो निमित्त हैं। वो ही कर्ता घर्ता है, इसलिये तुम अपने ऊपर मत लो यही Liberation है, यही सबसे उत्तम अवस्था है। यही तो कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, कि तू खाली निमित्त बन, ये देख मैंने सब करके रख दिया है, अरे काहे को काँपता है, काहे को डरता है, अर्जुन काँप गया था।

कैसे रहें?

जो अपने आप को जानता हैं, कि मैं ही वह अद्वितीय आत्मा हूँ, तो वह किसकी इच्छा में, किसकी कामना के लिये, शरीर को क्लेश देगा, यह आत्मज्ञान की बात है, साधना करते करते स्वयं जान जाओगे। जो दीखता है, वही दृश्य है तथा नाशवान है, जो नहीं दिखता वह अविनाशी है। जहाँ निराकार के दर्शन हुए कि पंगुवत हो गये, फिर उसे दौड़ धूप भांती नही, आनन्द में डूबा रहता है और स्वयं आनन्द वत हो जाता है। किसी कार्य को पूर्ण करने में हमारा दृढ संकल्प, हमारी निष्ठा के अनुसार ही हमे सफलता मिलती है, केवल शारीरिक एवं मानसिक श्रम में सफलता नही मिलती। ज्यों ज्यों वासना, कामना साधक के मन से दूर होती जाती है, त्यों त्यों आत्म तत्व के निकट पहुँचता जाता है, आत्मस्थ होते जाता है। ईश्वर को कर्त्ता मानकर उसी के आधीन रहकर कार्य करना, जैसा वह कहता है, या करवाता है, हमें करना पड़ता है, यह तीव्र वैराग्य में होता है, वहां मैं दूर हो जाता है करवाने वाला दूसरा होता है। परिवार में कमल सा रहना है, सबके साथ, सबसे अलग वो तुम्हें अपने में समेट लेना चाहते हैं, साधक को जय अवस्था में रहना चाहिये, जो अनुभूतियां हो चुकी है, उसी में मस्त रहना, कार्यों को उदसीन होकर देखते रहो, गुरु वाक्य को हमेशा ध्यान रखो। तदरूप होने पर, नाम लेते लेते जब वह मिला तो पता चला वह मैं ही तो था। सत, रज, तुम से परे होने के लिये सिर्फ शरणागत होना है। सब गुरुजी कर रहे, करवा रहे, सुख दुःख, हानि लाभ, हर परिस्थिति में सिर्फ गुरुजी का सतत स्मरण करते हुए, हर पल उसी में डूबते हुए, क्रिया के प्रति उदासीन होकर मुस्कुराते हुए, अत्यंत सहज अवस्था में रहते, सतचिदानन्द स्वरूपों अहम को प्राप्त हो जायेंगे।

क्या जानना है?

आप जो करेंगे वही आप को मिलेगा, आप नहीं करेंगे नही मिलेगा। आलसी कुछ नही करता। भाग्य का फल जो आप सिधौरी बांधकर आये हैं आपको मिलेगा ही, पौरूषम माने आत्म शक्ति, आत्म साक्षात्कार जब प्राप्त हो जाता है, ये सामर्थ्य है। आप सब समर्थ हैं, लेकिन हम अपनी सामर्थ्य को भूल गये हैं और उस ओर हम कुछ नहीं करते। क्या जानना है? अपने आपको जानना है, आपकी जो इंद्रियाँ है, गोलक हैं, वस्तुओं से उनका सम्बन्ध है, किस प्रकार से है, इन्द्रियों के कार्य कैसे हैं? वे क्या करते है, उनके गोलक कहाँ हैं? वे वश में आ सकते हैं क्या? शरीर शास्त्र भी मालूम होना चाहिये। कितने प्रकार के अवयव हमारे मस्तिष्क में है, उनके द्वारा जो गति बाहर आती हैं, अवयव कन्ट्रोल में आ जाते हैं, कन्ट्रोल में आने के बाद क्या स्थिति होती है, यह अनुभव अभ्यास

की बात है, यह यहाँ बोलने की आवश्यकता नही है। मन को हम कार्य देते है कि उसको करो, उसको ढूंढो, ऐसा करते करते वह विलय हो जाता है माने विषयो का इन्द्रियों से सम्पर्क छूट जाता है, कुछ काल के लिये, संवेदनाये, श्वास् प्रश्वास सब बन्द हो जाता है, इंद्रियाँ जो कर्मरत है, वासना, इच्छा कामनाओं से मैं और मेरा में कुछ नहीं रह जाता । इस स्थिति को हमने प्रत्याहार कहा। आपको इन्द्रियों की सीमा को लांघना है, उसके बाद वहाँ आत्मा का प्रवेश है। आपको पागल बनना है, अन्य काम के लिये कैसे पागल हैं आप? पाग का अर्थ होता है रंग, रंगना उसमें। जब तक आप पागल नहीं होंगे किसी काम के लिये, तब तक आप उसके अधिकारी कभी भी हो नहीं सकते।

(पूज्य गुरुजी के प्रवचनों के आडियो कैसेटों से एक मुमुक्षु द्वारा संकलित)

अन्य लेख

तेल्हारा में गुरूजी

गुरूजी (वासुदेव) ने महाराष्ट्र की यात्रा करते हुए (सन् 1940) तेलहारा में एक वृक्ष के नीचे स्वयं को बैठे पाया। उनकी चारो तरफ फैल रही आभा और कांति को देखकर, दूध विक्रेता राही श्री नन्दलाल तिवारी का ध्यान आकृष्ट हुआ, उनके भ्रमणशील स्वभाव से अवगत होकर दूध विक्रेता ने उनके ठहरने के लिये एक धर्मशाला में कक्ष का प्रबन्ध कर दिया, गुरूजी से भेंट करने वालो और परिचितों का दायरा बढ़ने लगा।

कुछ समय बीता गणेश उत्सव के समापन पर भजन, कीर्तन, धार्मिक एवं विविध कार्यक्रमों का आयोजन किया गया, एक रात्रि गुरूजी को ही तात्कालिक प्रवचन हेतु आयोजको द्वारा आमन्त्रित किया गया, गुरूजी भगवान गणेश की प्रतिमा को सेनानायक के वेशभूषा में देखकर, उनके असामान्य शरीर रचना ने मानव शरीर रचना पर व्याख्यान देने को प्रेरित किया।

गुरूजी ने बोलना प्रारम्भ किया, मनुष्य का शरीर प्राप्त करने की ललक ने देवताओ और दिव्य आत्माओ को समान रूप से बाँध रखा है, देव और दानव दोनों समान रूप से मनुष्य से ईर्ष्या रखते है, दोनों ही प्रारब्ध से दूट नही सकते। केवल मनुष्य ही मुक्ति या मोक्ष प्रापत कर सकता है। मनुष्य शरीर में विशिष्ट नाड़ी केंद्र है, जो असीम शक्ति के भंडार है, सतगुरू के मार्गदर्शन में उन्हें नियमित योग साधना द्वारा खोले या जाग्रत किये जा सकते है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य और विशेषाधिकार है कि वह अपने आत्मस्वरूप के बोध हेतु, परब्रम्ह में लीन होने का प्रयत्न करे। गुरूजी का प्रवचन मानव शरीर से आरम्भ होते हुए, दार्शनिकता और आध्यात्मिकता पर समापन हुआ।

तेलहारा औषधालय

प्रवचन की समाप्ति पर डॉ घैसास, श्री संत हेडमास्टर, श्री मामा भाजेकर, श्री श्री धर गंगाधर धर्माधिकारी (बाबूराव), जमींदार श्री माटे मास्टर रह गये थे। डॉ घैसास ने पूछा, जब आप

शरीर रचना तथा शरीर क्रिया विज्ञान के बारे में जानते हो, तो चिकित्सा शास्त्र के विषय में भी अवश्य जानते होंगे? गुरूजी ने बताया कि मैंने अकोला के ख्याति प्राप्त डॉ नन्दलाल भारती के मार्गदर्शन में तीन वर्षो त चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया है। आश्चर्यचकित हो, डॉ घैसास ने प्रश्न किया, किन्तु तुम्हारा औषधालय कहाँ है? सत्य उजागर हो गया, औषधालय खोलने के लिए उनके पास संम्पत्ति का अभाव है।

तत्काल ही अशंदान द्वारा 35 रूपये एकत्र हो गये, डॉ भारती ने एक अलमारी, कुछ पुस्तकें तथा औषधियां उपलब्ध कराई, एक कक्ष किराये पर लेकर 10 अक्टूबर 1948 दशहरा के दिन डॉ वासुदेव ने तेलहारा की जनता की सेवा में औषधालय खोला, डॉ भारती के द्वारा इसका उद्‌घाटन करवाया गया। लगभग 20 वर्षो तक तेलहारा, गुरूजी का कार्यस्थल रहा, इस नगर के नागरिक उन्हें अत्यधिक आदर व प्रेम करते थे, गुरूजी भी उन सबके निःस्वार्थ सेवा किये, दैहिक रोगों का देखभाल करते हुए आत्मिक कल्याण का ध्यान रखे, सबसे अच्छे सम्बन्ध बढ़ने लगे। डॉ भाऊ भिड़े, श्री गोडबोले तथा कुछ अन्य भी डॉ वासुदेव के अंतरंग बन गये।

दिव्य शक्ति का संक्रमण

श्रीमती भिड़े अपनी तृतीय गर्भावस्था के पाँचवे महीने में उदर में पीड़ा का अनुभव करने लगी, कुछ भी कार्य करने में, यहां तक वे चलने मे भी असमर्थ हो गई, सारी रात्रि स्टूल पर बैठकर व्यतीत करना पड़ता था। मेयो हॉस्पिटल नागपुर के चिकित्सा विशेषज्ञ डॉ देशमुख को दिखाने पर, परीक्षण उपरांत उनका मत था, कि तत्काल ही शल्य क्रिया द्वारा भ्रूण को निकाल डालना चाहिये, अन्यथा वह माता और बच्चे के लिये घातक सिद्ध होगा। चिंताओं से घिरे डॉ. भिड़े ने स्थिति स्पष्ट करते हुए गुरूजी से परामर्श माँगा, गुरूजी के पूछने पर वे बताये कि तत्कालीन खतरा नहीं है, प्रसूति के समय ही भय रहेगा। गुरूजी ने शल्य क्रिया 7 दिनों तक स्थगित रखते हुए, केवल सात दिनों तक समय चाहे।

आश्वासित होकर गुरूजी एक बीज मन्त्र के साथ ध्यान की एक विधि से श्रीमती भिड़े को अवगत कराये, जिसमें अपनी समस्त मानसिक शक्तियों को नाभि पर केंद्रित करते हुए यह सोचना था कि देवी भगवती उनकी सहायता कर रही है। और प्रतिदिन होने वाली घटना का उल्लेख गुरूजी को देना था। श्रीमती भिड़े दूसरी रात्रि स्वप्न में अशोक वृक्ष के नीचे एक वर्ष के अनेक बच्चों को क्रीड़ा करते हुए देखी, एक बच्च ठुमकता हुआ उनकी ओर आया और गोद में बैठ गया। तीसरी रात्रि को स्वप्न में दिखाई दिया कि एक अंडाकार प्रकाश चक्र भ्रूण के चारों ओर रक्षा कवच बना रहा है। स्वप्न का विवरण बताने पर गुरूजी बोले अब चिंता की कोई बात नहीं है, निश्चित समय पर वे एक पुत्र को जन्म देंगी। एक पखवाड़े में ही श्रीमती भिड़े सामान्य होकर चलते फिरते हुए बगैर पीड़ा के कार्य करने लगी, वे अपने बच्चे की रक्षा करते हुए प्रकाश चक्र को देख सकती थी। यथासमय उन्हें बहुत सुंदर पुत्र प्राप्त हुआ, गुरूजी के द्वारा बच्चे का नाम रखवाये जाने पर, उनका नाम मुकुंद रखा गया, अब वे कर्ण नासिका विशेषज्ञ डॉ मुकुंद भिड़े हैं।

भगवान विठ्ठल का आगमन

सन् 1956 में, गुरूजी की सहधर्मिणी माँ जी को, एक दिन प्रातः सूर्योदय के पहले स्वप्न में प्रकाश वलय से घिरे हुए कुछ ठिगने कद के दो व्यक्ति दिखे, माँ जी पूछी आप कौन है और क्यों आये है?उन्होंने कहा हम पंढरपुर के है और पंडित जी (गुरूजी) को पंढरपुर ले जाने आये है। माँ जी के कहने पर वे तो किसी गाँव में रोगी का परीक्षण करने गये है, यह सनुकर आगंतुको ने कहा ठीक है, जब वे लौटें तो आषाढ़ एकादशी को पंढरपुर आने को हमारा संदेश दे दें। गुरूजी के घर लौटने पर माँ जी उपरोक्त बातें बता दीं, एकादशी दो माह पश्चात थी निर्णय लेने का समय पर्याप्त था, किन्तु कुछ ही दिनों में वे दोनों इस घटना को भूल गये।

जब एकादशी का दिन आया, उपरोक्त रहस्यमय निमन्त्रण को गुरूजी भूल चुके थे, सामान्य दिनचर्या का पालन करते हुए दोपहर को औषधालय से लौटकर भोजन से पूर्व अपनी रीति के अनुसार स्नान हेतु गये, ज्योंही अपने शरीर पर गुरूजी ने पानी डालना आरम्भ किय, बाहर से मध्यम कद के श्याम वर्ण के, कन्धों पर एक कम्बल लिये, सिर पर पगड़ी बांधे, तथा हाथ में लाठी लिये हुए, आते हुए एक अपरिचित को देखे। वे निःसंकोच स्नान गृह में प्रविष्ट हो गये, उन्होंने गुरूजी को नमस्कार किये। गुरूजी बोले आप लोग स्नान के समय भी मुझे अकेला नहीं छोड़ते, देखिये आप किस प्रकार से गीले हो गये हैं। मैं इसीलिए तो विशेष रूप से आया हूँ कहते हुए वे पालथी मारकर बैठ गये। अच्छा ऐसी बात है कहते हुए गुरूजी उनको नहलाना आरम्भ कर दिए। दोनों ने साथ मिलकर प्रेमपूर्वक स्नान किये । गुरूजी स्नान के पश्चात् भोजन लिया करते थे, गुरूजी अतिथि से पूछे, क्या आप भोजन ग्रहण करना चाहेंगे?अथिति बोले हां। भोजन एक ही व्यक्ति के लिये ही पर्याप्त था, अतः भोजन असाधारण अतिथि को परोसकर, उनको भोजन करते हुए गुरूजी प्रसन्नता से निहारते रहे, और स्वयं उपवास कर लिये। भोजन उपरांत अतिथि बोले, क्या आप मुझे आठ आने देने की कृपा करेंगे, मैं भगवान पंढरीनाथ के लिये एक पुष्पाहार खरीदना चाहता हू, जैसे ही भगवान को समर्पित होगा, आपको विदित हो जायेगा। गुरूजी बोले, आप सौभाग्यशाली प्रतीत होते हैं, आज केवल इतना ही हमारे पास है, कहते हुए गुरुजी ने उन्हें आठ आने का सिक्का दे दिये। विचित्र अतिथि ने आतिथ्य ओर पैसो के लिए गुरूजी को धन्यवाद देकर, मार्ग पर चल पड़े, लगभग 25 गज जाने के पश्चात् वे अदृश्य हो गये। तभी गुरूजी को स्मरण आया आज ही तो आषाढ़ी एकादशी का दिन है, उन्हें बोध हो गया आगंतुक कोई और नहीं साक्षात विठ्ठल ही थे। गुरूजी भूलने के कारण पंढरपुर जा न सके, पर भगवान पंढरीनाथ स्वयं आकर दर्शन देना भूल न सके। स्नान पश्चात गुरूजी वस्त्र बदले। चूकि अतिथि रूपी विठ्ठल जी के दिव्य वस्त्र थे, अतः उन्हें स्नान पश्चात वस्त्र बदलने की आवश्यकता नहीं हुई, उसी वस्त्र को पहने हुए वे भोजन किये।

योगक्षेमं वहाम्यहम

सन् 1940 के प्रारम्भ काल में, यूरोप में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा हुआ था, सभी वस्तुओं का

दाम बढ़ा हुआ था, गेंहू 4 से 5 रूपये प्रति सेर तक बिका। गुरूजी अपने रोगियों से नाम मात्र के शुल्क लेते थे, निर्धनो और असहायों को प्रायः निःशुल्क औषधियां दे देते थे, इस उदार प्रवृत्ति ने उनकी गृहस्थी में सदस्यों की संख्या और बढ़ा दी थी, जिनका भरण पोषण भी माँ जी को ही करना पड़ता था, माँ जी ने समस्त प्रवीणता से गेहूं का अधिक से अधिक संग्रह की थी, जिससे ज्यादा से ज्यादा समय तक गेंहू चल सके, और गुरूजी को गेहॅू की रोटियां परोसी जा सके। वे स्वयं और बच्चे माइलो से बने भोजन पर निर्वाह करते, गुरूजी इस सब बातों से अनभिज्ञ थे। एक दिन गेहूं का संग्रह समाप्त हो गया, माँ जी को कष्ट होते हुए भी गुरूजी को माइलो से बनी चपाती परोसनी पड़ी लाल रंग के चपाती को पानी के सहारे निगलने की कोशिश किये अंततः उन्हें थूकना पड़ा। माँ जी ओर बच्चों के द्वारा साहस और उदारता से किये जा रहे कष्टो का सामना और उनके भविष्य की चिंता से व्यथित होकर गुरूजी रो पड़े, आँखों से आंसू बहकर गालों को भिगोने लगे। उन्हें ईश्वर के विधान में आस्था रखने के सिवा कोई मार्ग नहीं मिला। वे लेटकर इस समस्या के समाधान हेतु ध्यान करना प्रारम्भ किये। लगभग एक घण्टे के बाद किसी के नारायण राव कहकर पुकारने से उनका ध्यान भंग हो गया, वे सेठ बद्रीनाथ पांडिया थे। अतिआवश्यक कार्य है, कहकर सेठजी गुरूजी को घर ले जाकर दूध और मिठाई सामने रखे, उनके बच्चें के लिए पर्याप्त है उनने कहा, उनकी प्रसन्नता हेतु गुरूजी दूध पिये और मिठाई का एक टुकड़ा खाये, वार्तालाप करते हुए वे जैसे ही घर लौटे, गुरूजी आश्यर्चचकित होकर एक क्विनटल गेहूं का बोरा द्वार पर दीवार के सहारे रखे देखे। सेठ जी ने आश्वासन दिया कि अगली फसल तक गेंहूँ उनके पास नियमित रूप से पहुंचाये जायेंगे। दिव्य हस्त ने पुनः संकट में सहायता कर योगक्षेमम व्हाम्यहम् की पुष्टि की।

अनोखा उपनयन संस्कार

गुरूजी के ज्येष्ठ पुत्र बाबा (9 वे वर्ष में) का एवं परिवार का पहला उपनयन संस्कार किया जाना सुनिश्चित हुआ। गुरूजी के अंतरंग मित्रों का दायरा भी स्वयं में एक भीड़ से कम नहीं था, दैनिक आय को देखते हुए यह निश्चित हुआ कि 60 से 70 परिवारों को इस प्रार्थना के साथ आमंत्रित किये जाये, कि केवल परिवार के प्रमुख ही कार्यक्रम की शोभा बढ़ायें । मितव्ययिता के साथ व्यय का आकलन 100 रूपये हुआ, जिसमें और कटौती सम्भव नही लग रही था। अम्बादास नाई के द्वारा मौखिक निमंत्रण भिजवाया गया। अम्बादास ने निमंत्रण में कहा कि केवल मुखिया ही नहीं सभी सदस्य कार्यक्रम में शामिल होंगे। निर्धारित दिन एक अप्रैल था। जहाँ 60 से 70 अथितियों की आशा की गई थी, वहा लगभग 600 लोगों का जमाव था। ऐसा लग रहा था मानो लोग प्रिय गुरूजी को अप्रैल फूल बना रहे हो। माँ जी अश्रु से भरे अपने पति अर्थात गुरूजी को चिंता व्यक्त की। गुरूजी उनको आश्वासन देते हुए बोले कि प्रतीक्षा करो और धैर्य धारण कर देखो विधाता स्वयं प्रबन्ध करेंगे। 50 के समूहों में लोगों ने भोजन का आनन्द लेना प्रारम्भ किये, खाने का कार्य सन्ध्या तक चलता रहा। केवल ईश्वर ही जानता है, लगभग 75 लोगों को पूर्ति होने वाला भोजन, कैसे 600 लोगों को सन्तुष्ट कर सका। रात्रि के 10 बजे अंतिम अथिति ने विदा ली,

गुरूजी, एक पुलिस उप निरीक्षक श्री महाजन एवं श्री भैय्या लाल पांडे के साथ भोजन के लिये बैठे, श्री महाजन ने कहा, किस प्रकार इतने अधिक स्त्री, पुरूषो तथा बच्चों ने अनिमंत्रित ही कार्यक्रम में उत्साहपूर्वक भाग लेकर उमंग और हर्ष का प्रदर्शन किया। यही कार्यक्रम यदि धनी परिवार में होता तो बहुत सा धन व्यय करने के उपरांत भी आई हुई जनता में इतनी रूचि और उमंग उत्पन्न नहीं कर पाता। अतः तेलहारा आपका घर है, निवास का स्थान मात्र नही, और प्रत्येक व्यक्ति के ह्रदय में आपके लिये स्थान है। गुरूजी भावावेश से अभिभूत हो उठे, और उनके नेत्रों में अश्रु भर आये। उपनयन संस्कार की आश्चर्यजनक घटना से प्रभावित होकर मगनलाल पंसारी ने रसद की कीमत 100 रूपये को, जिसे गुरूजी दुकान के पटल पर रखकर चल दिये थे अपनी पत्नी द्वारा माँ जी को उपनयन संस्कार के अवसर पर भेंट स्वरूप वापस भिजवा दिये।

मजहर खान तथा प्रकाश पिण्ड

उर्दू शाला के प्रधानाध्यापक श्री मजहर खान, तेलहारा में गुरूजी के आत्मीयजनों में से एक थे। वे सर्वप्रथम एक रोगी के रूप में आये, धीरे धीरे उनके मध्य एक घनिष्ठ आध्यात्मिक लगाव पनपने लगा। श्री खान को ग्रन्थ कुरान की अच्छी जानकारी थी, उन्होंने ध्यान देना आरम्भ किया कि गुरूजी अपने अनुभवों से किसी भी बात का निरूपण करते है, उसके सदृश्य उदाहरण पवित्र कुरान में अवश्य मिलते है। फारसी में लिखी सूफी सन्तो की जीवनियों को पढ़ने पर उन्हें ज्ञात हुआ, कि सूफी सन्तों के और गुरूजी के अनुभवों और दर्शन में बहुत साम्य है, विशेष कर नूर या दिव्य ज्योति के स्पष्टीकरण में। गुरूजी उनके नजरों में बहुत ऊँचे उठ गये। धीरे–धीरे श्री खान को गुरूजी के उर्दू भाषा पर आधिपत्य और कुरान के विस्तृत ज्ञान की जानकारी होने लगी। एक रात्रि गुरूजी अपने कक्ष में गहरे ध्यान की स्थिति में देखे, कि भौहों के मध्य उत्पन्न हुए प्रकाश ने एक चक्र का रूप धारण कर लिया और कुरान शरीफ के पन्ने एक के बाद एक दिखाई देने लगे, जटिल आयतें गूढ़ार्थ और व्याख्याओं के साथ दिखाई पड़ी। दूसरे दिन श्री खान कुरान शरीफ के अध्ययन से उत्पन्न हुए संदेहों के स्पष्टीकरण हेतु गुरूजी के पास आये, गुरूजी ने उन्ही विषयों पर बोलना आरम्भ करते हुए स्पष्टीकरण दिये, जिनके बारे में वो पूछने आये थे। इसी प्रकार एक सप्ताह तक श्री खान के बगैर पूछे उन्ही विषयों पर स्पष्टीकरण देना, गुरूजी के द्वारा चलता रहा, अब अपनी उत्सुकता को श्री खान दबा नही सके और गुरूजी से इसका रहस्य पूछने पर, गुरूजी बताये किस प्रकार प्रकाश चक्र में कुरान के आयतों के व्याख्यानो सहित उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। गुरूजी रूपी दिव्य हस्ती से अत्यंत प्रभावित होकर, दूसरे दिन श्री खान आध्यात्म के गूढ़ मार्ग की दीक्षा लिये, इनकी विधियां कुरान शरीफ पर आधारित थी। एक दिन श्री खान ध्यान कर रहे थे, प्रकाश का विशाल पिण्ड उनके सामने आया, उन्हें अनुभव हुआ कि वो उसमें बैठे हुए है, प्रकाश पिण्ड मुख से प्रवेश कर नीचे तक चला गया, उनका शरीर पारदर्शी हो गया, वे अपने आंतरिक अवयवों को कार्य करते हुए देख सकते थे। ध्यान समाप्त होते ही गुरूजी के पास श्री खान कृतज्ञता से दौड़े और अपना दिव्य अनुभव सुनाये।

वर्धा गुरूपूर्णिमा 23 जुलाई 1995 को श्री खान गुरूजी को बताये, कि हज हेतु जाने पर मक्का मदीना में चारों तरफ उन्हें नूर का दर्शन मिला साथ ही उनके मध्य में श्री गुरूजी भी उपस्थित थे। श्री खान ने अपने व्यक्तव्य में उस दिन कहे, कि अल्लाह ने अपना नूर हमारे अंदर रखे है, गुरूजी उसी नूर को देखने मार्गदर्शन कर रहे है, 40 साल से ताल्लुख रहा है मेरा गुरूजी से। एक होता है स्वार्थी जिंदगी, और एक होती है वो जिंदगी जिसमें इंसान अपने मकसद को पूरा करके जाने वाला हो। हो सकता है वो सारी दुनिया के इंसानो को वो अपने रब तक पहुँचा दे, उस रास्ते पर उनको डाल दे। इतना अजीम काम लिया जा रहा है गुरूजी से। इतना अजीम काम कर रहे है गुरूजी। लाखो नहीं करोड़ों में ऐसे एकाध होते हैं, जो अपने उद्देश्य को सामने रखे और हजारो लाखों इंसानो को अपने मौला से मिला दे। गुरूजी के लिये श्री खान के द्वारा ये शेर कहा गया, ''हजारों साल नरगिस अपने बेनूरी पे रोती है। बड़ी मुश्किल से होती है, चमन में चश्म ए दीदवर पैदा'' ।

तेलहारा में गुरूजी श्री भागवत बुआ पंढरपुरकर से शास्त्रीय संगीत का ज्ञान प्राप्त किये, और श्री काटे जी से ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हुए, कुछ ही समयों में इन पर अधिकार कर लिये। बाद में समाज के हितो के कार्य करने में इनसे काफी सहायता मिली।

Guruji - Divinity Incarnate

The impression after becoming Guruji's disciple is still graven on my memory. There in that seated being was a great impersonal force that read the scales of my life with better sight than I could ever hope to do. He answered questions upon such recondite topics as the nature of man's soul, the mystery of God, the strange powers which lie unused in the human mind, and so on, but when he did venture to speak I used to sit enthralled as I listened to his soft voice. For authority was vested in that calm voice and inspiration gleamed in those luminous eyes. Each phrase that fell from his lips seemed to contain some precious fragment of essential truth. In the presence of this Sage one felt security and inward peace. The spiritual radiations which emanated from him were all penetrating. He possessed a deific personality which defies description. But the most important part of his utterances, the subtle and silent flavour of spirituality which emanated from him, can never be reported.

One could not forget that wonderful pregnant smile of his, with its hint of wisdom and peace won from suffering and experience. He was the most understanding man I have ever known; you could be sure always of some words from him that would smooth your way a little, and that word always verified what your deepest feeling told you already.

(Excerpt from The Maharshi and his message by Paul Brunton)

दोस्ती

दो सतवादी मिले तो दोस्ती होती है। सत्‌=आत्मा, आत्म परम है इसलिए इसे परमात्मा कहते है। वो सर्वत्र है सभी सचराचर में शक्तिरूप में व्याप्त है व सबसे निकट हमारे भीतर है। बुद्धि के भीतर विराजमान परमात्मा (अंतरात्मा) का संग ही वास्तव में सतसंग है, दोस्ती है व बाहरी रूप में भी आत्म योग होने पर ही कोई सतवादी होता है। जिनके प्रकाश से, शक्ति से हममे सामर्थ, शक्ति है, हममे आकर्षण है सुन्दरता है, हमारा शरीर प्रकाशित है, सुगन्धित है, जिसके कारण हमारी पूछ है जिससे हम संसार में काम के है उस भीतर विराजमान ब्रम्ह का संग, मिलन, दोस्ती हो जाय व उनसे समाधान (सूझबूझ) लेकर हम कार्य करे तो पूरा संसार, अखिलब्रम्हांड मिल जाय, वो अंतरात्मा(जिस शक्ति से हम चल रहे है) इस शरीर को छोड़ दे तो ये बहिर्जगत में जो हमारे चाहनेवाले है, दोस्त है वो पास में नही फटकेंगे। आत्म योग से पहले तो कोई स्वयं का नहीं होता। किसी का क्या होगा? कहां गया है–स्वार्थ लागे करय सब प्रीति सुर नर मुनि सबके यही रीति, स्वार्थ सिद्ध हुआ कि दोस्ती समाप्त। काम का नही रहा, छोड़ दिए, या कोई और ज्यादा काम का मिल जाय तो उसे पकड़ लिए। एक गाना है–मतलब निकल गया तो पहचानते नहीं, सामने से गुजर जाते हैं जैसे जानते नहीं....

योगः कार्यसु कौशलम

योग=बुद्धि का आत्मा(अंतरात्मा, परमात्मा) से योग, मिलन से कार्य में कुशलता आती है। आत्म् योग से बुद्धि को आत्मा से समाधान (सूझ–बूझ) प्राप्त होती है, अर्थात परमात्मा के निर्देशन से कार्य होता है। इसे समझने के लिए इंद्रियों को घोड़ा व मन को लगाम, बुद्धि को सारथी व आत्मा को रथी कहा गया है। योग से इंद्रिय रूपी घोड़े मनरूपी लगाम के व मनरूपी लगाम बुद्धि को सारथी के नियंत्रण में होता है व बुद्धि रूपी सारथी आत्मा रूपी रथी (अंतरात्मा) के निर्देशन सूझबूझ (समाधान) से कार्य करती है, जिससे प्रत्येक कार्य व व्यवहार आदर्श, उत्कृष्ट (सर्वोतम) कुशल होता हे। विचार करके देखें तो अधिकतर मनुष्य एक दिन एक क्षण नहीं जीता। या तो भूत में घटित घटनाओं में या भविष्य की कल्पनाओं में या औरों (दूसरों) में खोया रहता है। वर्तमान में, अपने में आनन्दित नहीं रहता वर्तमान में नहीं जीता, वर्तमान खो (बीत) जाता है।(वर्तमान से ही भूत और भविष्य बनता है) वर्तमान में, अपने में रहना (अपने भीतर विराजमान ब्रम्ह में रमना) यही.. सहजावस्था है सहज सहज सब कोई कहे सहज न चीन्हे कोय, आठों प्रहर भीनी रहे सहज कहावय सोय।

> क्या कोई मन्दिर में गन्दे पैरों से प्रवेश करता है?
> उसी तरह, व्यक्ति आत्मा के मन्दिर में दूषित मन के साथ प्रवेश नहीं करता।

कर्म

कर्म करना धर्म है। पर कौन सा कर्म? अर्थात करने योग्य कर्म और वह है–निष्काम कर्म। आज साक्षात्कार (आत्मज्ञान प्राप्ति) हेतु किया हुआ कर्म ही निष्काम कर्म है, बाकी सब सकाम कर्म है। पुण्य और पाप दोनों बेड़ी (बंधन) हैं, एक सोने की बेड़ी है दूसरा लोहे की बेड़ी है, दोनों ही बंधन का कारण है। आत्म ज्ञान होने पर मैं अर्थात कर्तापन का भाव समाप्त हो जाता है, फिर न पुण्य संचय होता है न पाप–यही मुक्ति है। यही जन्म का मूल उद्धेश्य है। सांसारिक निर्वाह के लिए जो कर्म किया जाता है उसे उपजीविका कहते है। आत्म साक्षात्कार (आत्मज्ञान प्राप्ति) हेतु किया हुवा कर्म को जीविका कहा गया है। कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म अर्थात कर्तव्य कर्म को जो करता है, वह संन्यासी तथा योगी है और केवल अग्नि व क्रियाओं (कर्मो) का त्याग करने वाला योगी संन्यासी नहीं होता। कृष्णजी कहते हैः हे अर्जुन जिसको संन्यास (सन्यासी) कहते है, उसी को तू योग (योगी) जान। यदि मन में एक भी इच्छा–कामना या संकल्प है, तो न वह योगी है न संन्यासी है। न किसी की निंदा न स्तुति, सबकी अपनी–अपनी अवस्था है, अवस्था अनुरूप प्रकृति है, प्रकृति अनुरूप मनुष्य बरत (व्यवहार कर) रहा है। आदमी प्रकृति के जब तक अधीन है मजबूर है। तम, रज,सत,संभवा प्रकृति। प्रकृति (सत, रज,तम) से ऊपर उठे बिना हम प्रकृति के अधीन है अर्थात पराधीन है। इससे ऊपर उठने के बाद प्रकृति हमारे अधीन होगी, तब हम स्वाधीन होंगे, समर्थ होंगे। तब हमारा कल्याण होगा व हम औरो के कल्याण में सहायक होंगे। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते है–परवश जीव स्ववश भगवंता अर्थात इंद्रियों (प्रकृति) के वश में हो वह जीव व स्व=आत्मा (परमात्मा) के वश में हो वह भगवान निरंतर–ध्यान योग अभ्यास से मन, बुद्धि का आत्म योग होने से स्ववश (बुद्धि आत्मस्थ) होता है। यही हमारे जन्म का मूल उद्‌देश्य है। अहम् ब्रम्हास्मि। अर्थात मैं ब्रम्ह (ईश्वर) हूँ, ज्ञान सही है पर अधूरा है। ऐसा तो रावण, हिरणकश्यपु भी कहे हैं। जिस दिन सर्वम् ब्रम्ह का बोध हो जाय तब ज्ञान पूर्ण होगा। तब वह मौन होगा, शून्य शहर तक सब गए, शून्य से आगे नाहीं। शून्य से आगे जे गये मंद–मंद मुस्कान यही हमारे जन्म का मूल उद्‌देश्य है। ऊँ रूप भिन्न है, देह (शरीर) भिन्न है पर देहि अर्थात देह को धारण करने वाला शक्ति (ईश्वर) परमात्मा एक ही है। परम पूज्य श्री सद्‌गुरुजी एक भजन गाते थे उसका बोल है–मैं नही, कोई बहिरूपिया है वो, मैं नहीं.........रूप भिन्न है व उनमे तत्व (ईश्वर) एक ही है। विभिन्न रूपों में उसी एक तत्व (ईश्वर) की पूजा है। जिससे हम आप व जितने चराचर हैं वो चैतन्य है प्रकाशित है, सुगन्धित है, सुंदर है, उस तत्व की ही पूजा है। पंच तत्व के शरीर को धारण करने वाले इसी तत्व (शक्ति) जिससे हम आप व सम्पूर्ण सचराचर, अखिल ब्रम्हाण्ड प्रकाशित है का ध्यान स्वयं ब्रम्हा जी भगवान विष्णु, महादेव शंकरजी, भगवान श्री राम, हनुमानजी, भगवान बुद्ध व सभी साधक, सिद्ध, सुजान भगवान करते है जिसके कारण ये शक्तिसम्पन्न, समर्थ हैं । उनकी ही पूजा है, सिया राम मय सब जग जाना। हर रूप में (ईश्वर) दर्शन यही यथार्थ दर्शन है व यही प्रेम है, यही god is love है। जितने मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, गिरजाघर हैं ये स्मारक हैं, स्मारक=स्मरण दिलाने

वाला। ज्योति स्वरूप वो प्रकाश है, कहा गया है—आत्मा स्वयं ज्योतिर्भवति, अल्लाह नूर है, god is light। भाषा भिन्न है बात एक ही है। विष्णु भी कहते है विष्णु=विश्व के अणु रेणु में विद्यमान ईश्वर, ये ही सर्वत्र है व सबसे निकट हमारे भीतर है। बुद्धि का आत्म योग भीतर होता है ये आंतरिक प्रक्रिया है, इसीलिए आत्म योग के लिए, ईश्वर प्राप्ति के लिए कहा गया है— बाहर के पट मूंद के तू भीतर के पट खोल रे तोहे हरि (पिया) मिलेंगे। नास्तिक=न=नही, अस्ति=है, एक अर्थात जिनके दृष्टि में ईश्वर एक नहीं है, वो नास्तिक। आस्तिक=अस्ति=है एक, अर्थात जिनके दृष्टि में ईश्वर एक ही है, वो आस्तिक। वही एक ईश्वर जो सर्वेश्वर (सबका ईश्वर) है, वही ही विभिन्न रूपों में शक्ति रूप में विराजमान है। रूप भिन्न है पर उसमें तत्व (परमात्मा, ईश्वर) एक ही है, वह ही सद्गुरु है। सत मायने आत्मा, आत्मा परम है। इसलिए परमात्मा कहते है, कुंडलिनी, भगवान, ईश्वर भी कहते है। वह सम्पूर्ण चराचर में शक्ति रूप में विद्यमान है। वो निर्गुण निराकार है वो प्रकाश—ज्योतिस्वरूप है। कहा गया है आत्म स्वयं ज्योतिर्भवति।

एक मुमुक्षु—रायपुर

महाराष्ट्र में गुरुजी का आध्यात्मिक प्रवास

भारतभूमि अवतारों की, ऋषि मुनियों की तथा योगियों की भूमि रहीं है। उसमें भी महाराष्ट्र भूमि विशेष रूप से महान संतो की तथा योगियों की भूमि मानी जाती है। जैसे कि महाराष्ट्र के महान संत श्री ज्ञानेश्वरजी, तुकाराम महाराज, एकनाथ्र महाराज, नामदेव, गोराकुंभार, मुक्ताबाई, जनबाई रामदास स्वामी इन संतों के चरित्र का पू. गुरूजी के जीवन पर गहरा प्रभाव था। इसलिए पू. श्री गुरूजी ने अपनी तपस्या तथा कर्मभूमि के रूप में महाराष्ट्र की भूमि को ही चुना। इसका और एक प्रमुख कारण यह है कि महाराष्ट्र के अधिकतर संत गृहस्थ होकर भी आत्मसाक्षातकारी संत थे। पू. श्री गुरूजी स्वयं भी यही चाहते थे कि संसार में रहकर, समाजाभिमुख होकर आत्मसाक्षात्कार कर लेना चाहिए। पू. श्री गुरूजी का आध्यात्मिक प्रवास तथा महाराष्ट्र का प्रवास साथ—साथ गंगा के प्रवाह जैसा बहते—बहते निर्मल तथा पवित्र होते गया।

''बहता पानी रमतायोगी'' इस वित्तनुसार पू. गुरूजी का जीवन था। उन्होंने परिव्राजक अवस्था को स्वेच्छा से स्वीकार किया था। उन्होंने भ्रमंती के समय किसी को कुछ भी नहीं माँगा यहाँ तक कि पानी भी नहीं मांगा। वो कहते थे मांगने से मर जाना अच्छा यह है सच्चे गुरू की सीख। वो और कहते थे हमारे साथ चलना माने मुँह में अंगार रखना बराबर है। पू. श्री गुरूजी के ध्यान साधना और भ्रमण यही प्रमुख कार्य थे। वह किसी के घर भी नहीं ठहरते थे। जब भोजन नहीं मिला तो उन्होंने उपवास किया। कई बार उन्होंने पत्तियाँ और बड पीपल बेल आदि वृक्ष के फल खाकर तथा झरनो या कुओं से जल पीकर अपने शरीर और प्राण की रक्षा की है।

पू.श्री गुरूजी का महाराष्ट्र में पहला पडाव था शेगांव के पास वारी नाम का गांव है जो

''वारिका हनुमान'' नाम से विख्यात मारुती मंदिर है। यह स्थान अत्यधिक रमणीय और शांतिपूर्ण है। इस स्थान पर उन्होंने कुछ दिन ध्यान साधना में व्यतीत किये। इस स्थान पर कठोर अनुशासन, पूर्ण निर्पिप्तता, अडिगनिष्ठा तथा सत्य की खोज हेतु ईश्वर प्रति संपूर्ण समर्पण भावने वहाँ के महंत श्री दासबाबा का ध्यान आकर्षित किया था। आज भी उनकी सामाधि इस मंदिर परिसर में मौजूद है। इस जागृत स्थान पर की गई कठोर साधना के फलस्वरूप महावीर हनुमान ने अपने भक्त को आश्वस्थ किया कि मेरा भक्त त्रिविध तापों से मुक्त हो जायेगा। इस प्रकार हनुमान जी की कृपा पाकर पू.श्री गुरूजी यहाँ से अंजनगांव सूर्जी पहुंचे। वहा एक रामलीला मंडली से उनका संजोगवश परिचय हुआ। रामलीलामंडली के साथ श्री गुरूजी नागपूर स्थित भंडाररोड शंकर मंदिर में आए। रात में साधना हेतु आसन में बैठने वाले ही थे कि सामने के दरवाजे से लगभग सातफुट उंची अति सुंदर तेजस्वी प्रकाश कि किरणे बिखेरते हुए दिव्य देहधारी पुरूष को द्वार से प्रवेश कर शंकर मंदिर कि ओर आते देखा। यह दिव्य देहधारी पुरूष दुसरे कोई नहीं बल्की स्वयं भगवान शिव थे। पू. श्री गुरूजी ने महाराष्ट्र में जो प्रवास शुरू किया तब सबसे पहले भगवान शिव ने ही उन्हें दर्शन दिए। उनके बचपन मे भी दिव्य दर्शनों का सिलसिला दादाजी के कमरे में शिवजी के दर्शन से ही शुरू हुआ था। भगवान शिव योगियों के आदिगुरू माने जाते है। उन्होंने ही नवनायों को ये कुण्डलिनी योग बतलाया था। पू.श्री गुरूजी के लिए शिवजी के दर्शन होना यह एक शुभ संकेत ही था।

सन् 1931 में पू. श्री गुरूजी रामलीला मंडली के साथ वरूड में पहुंचे। ईश्वर अपने भक्तों को कभी निराश नहीं करते। आवश्यकता की घड़ियों में भक्तों को अनपेक्षित दर्शन देकर आशीष प्रदान करते है। गुरूजी अपने कुछ साथियों के साथ खुले स्थान में शयन कर रहे थे। भोर का समय था। उन्होंने पूर्व की ओर देखा कि 40 फुट व्यास के विशाल चन्द्रमा में भगवान श्रीराम और सीताजी तथा गुरूवशिष्ट जी ने अपने प्रिय भक्त को आशीर्वाद देकर भक्त योग्य पथ पर चल रहा है इसका प्रमाण दिया। इसी गांव में जहा श्रीरामजी ने दर्शन दिए वहां भगवान श्रीकृष्ण भी अपने लाडले भक्त को दर्शन देने को इच्छुक थे। इसी वरूड गांव में जब पू. श्री गुरूजी पेचिश से ग्रस्त थे उसी समय भगवान श्री कृष्ण ने चरवाहों के रूप में आकर अपने प्रियतम भक्त की सहायता की। भगवान पेचिश का अजीब तरीका बताकर तथा अपना भक्त अचछा हुआ देखकर अदृश्य हो गये। वरूड से रामलीलामंडली हुमनाबाद पहुंची। यहा पू.श्री गुरूजी को ख्वाजा साहिब ने एक मनोहारी शिशु के रूप में दर्शन देकर कृतार्थ किया।

रामलीला मंडली कई नगरों में प्रदर्शन हेतु यात्रा कर अंत में औरंगाबाद पहुंची। यहां पू. गुरूजी ने रामलीला मंडली से तब अपने पर्याप्त लम्बे संबंध का समापन कर दिया। उन्होंने कुछ दिन औरंगाबाद के राममंदिर में प्रवचन किया जिससे जन–साधारण की आत्मोन्नति में सहायता हुई। उनकी बीज की खोज जारी थी। उनके पास भोजन के लिए पैसे नहीं थे। किसी भी परिस्थिति में भिक्षा न मांगने का उनका व्रत था। औरंगाबाद शहर में एक बरगद के पेड़ की छाँव में

उन्होंने सात दिन केवल पानी पीकर ही गुजारे थे। सातवें दिन वह अपनी सुधबुध खोकर पेड़ के नीचे गिर पड़े। कुछ ही क्षण आत्मविस्मृति में बीते होंगे। उसी क्षण माँ भगवती ने दिव्य दर्शन दिया और ममताभरी वाणी में बोली ''अब से तुम कभी भी भोजन के अभाव से पीड़ित नहीं होंगे। इसी शहर के सेठ मगनलाल के खेत की गोल छतरी में पू.गुरूजी गहरे ध्यान में डूबे थे। उसी समय एक मुस्लिम संत पेश इमाम ने दर्शन देकर बीज की खोज हेतु कवच धारण करने की सलाह दी। यहां एक बात कहना चाहता हूं कि यह कुण्डलिनी योग किसी परंपरागत सिद्ध गुरू से विधिवत दीक्षा प्राप्त कर ही पाया जा सकता है। लेकिन हमारे पू.गुरूजी स्वयं जन्मसिद्ध योगी थे। इसलिए यह अपवाद है कि उन्होंने किसी गुरू की प्राप्ति बिना ही बीज प्राप्त कर लिया। ऐसी कहावत है ''अपवाद बिना नियम सिद्ध नहीं होता''। यदि वो पेश ईमाम के मार्गदर्शनानुसार कवच धारण नही करते तो उनका देहपात हो सकता था। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है ''शरीरम् आद्यं खलु धर्मसाधनम्।। यही देह ही नही रहेगा तो धर्मसाधना कैसी पूर्ण होगी?

एक दिन जब पू. श्री गुरूजी का प्रवचन चल रहा था दो सज्जन श्री बापूसाहेब देशपांडे और श्री दादा भीमराव जोशी संयोगवश वहां आए। प्रवचन सुनकर दोनों को संत एकनाथ महाराज का आर्शीवाद भी प्राप्त हो चुका था। इसलिए उन दोनों की यह धारणा थी कि श्री गुरूजी को परम पवित्र गृहस्थ संत एकनाथ महाराज ही उनकी खोज में सहायता कर सकते हैं। इसलिए पू. गुरूजी को पेंठण जाकर संत एकनाथ महाराज से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए। पू.गुरुजी ने बिना विंलब पैठण जाकर गोदवरी तट पर अपनी साधना उत्साह से नयी उमंग के साथ प्रारंभ कर दी। सच्ची लगन और कठोर साधना के कारण ही एक पखवाड़े के बाद स्वयं श्री एकनाथजी ने प्रसन्न होकर दर्शन देकर अयोध्या जाने को निर्देशित किया। अयोध्या से लौटने के पश्चात उन्होंने तय कर लिया कि वो अब स्थिर गृहस्थ जीवन जीयेंगे। उन्होंने अकोला के डॉ. नंदलालभारती के पास अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने पू.श्री गुरूजी को स्वतंत्र होमिओपैथी का औषधालय शुरू करने की सलाह दी। वह स्वयं का औषधालय खोलने का निर्णय भी ले लेने किन्तु उनके पास पर्याप्त धन राशि भी नहीं थी। चारों ओर से चिंता तथा निराशा ने उन्हें दु:ख के अनंत मार्ग में धकेलना आरंभ कर दिया। इसलिए उन्होंने इस निराशा का अंत योग की रेचक कुम्भक विधि से करने का तय किया। इस विधि से या आत्मघात हो सकता, नही तो आत्मसाक्षात्कार कराने तथा कुडलिनी महाशक्ति जागृत करने की क्षमता रखता था। एक दिन पू.गुरूजी ने निश्चयपूर्वक इस विधि का प्रयोग किया। इसके कारण उन्हे दिव्य ज्योतिर्मय चकाचौंध करने वाले प्रकाश के दर्शन हुए समस्त शारीरिक संवेदनाओं का ह्मस हो वह शून्य हो गये। उन्होंने स्वयं को अपरिमित उज्जवल आभायुक्त प्रकाश से घिरा पाया। मानो सह सूर्य उनके चारों ओर दैदीप्यमान हो। उन्होंने स्वयं को सीमाहीन अथाह प्रकाश के सागर में डूबा पाया। यहाँ सम्पूर्ण एकत्र हुआ व इसी क्षण से द्वैत हमेशा के लिए समाप्त हो गया। इसी को आत्मसाक्षात्कार की स्थिति कहा जाता है। पू. श्री गुरूजी इस क्षण से भावावस्था में रहने लगे। अकोला के पास तेल्हारा गांव में वो इसी भावावस्था में आये और भविष्य में वहां होमिओपॅथी तथा आयुर्वेदिक दवाखाना चलाया।

महाराष्ट्र में आषाढ़ी एकादशी को पंढरपुर की यात्रा होती है। लाखों लोग पैदल चलकर इस यात्रा में सम्मिलित होते हैं। इस को वारी कहा जाता है ओर जो लोग यह वारी करते है उन्हे वारकरी कहा जाता है। करीब–करीब हजार साल से पंढरपूर यात्रा की परंपरा चली आ रही है। भगवान विठ्‌ठल के दर्शन की सच्ची लगन से वारकरी कठिनाइयों का सामाना कर आषाढी एकादशी को पंढरपुर में एकत्रित होते हैं। पू. श्री गुरूजी के लिए यह बड़ा शुभ दिन था क्योंकि स्वयं भगवान विठ्‌ठल मानव देह धारण कर अपने प्रियतम भक्त से मिलने तेल्हारा में उनके घर प्रगट हुए। भगवान जब दर्शन देते हैं, तो उसकी भनक तक किसी को लगने नहीं देते लेकिन वो अपने पदचिन्ह पीछे छोड़ जाते हैं। प्रतिदिन भक्त पूजा के समय भगवान को नहलाते तथा उनको भोग लगाते हैं। इतना ही नहीं, भक्त के घर भगवान ने भोजन भी ग्रहण किया। इसके पश्चात माला के लिए पैसे लेकर भगवान विठ्‌ठल के दर्शन की महिमा अपरंपार है। पंढरपूर को योग पीठ भी कहा जाता है इसी तेल्हारा गांव में पू. गुरूजी को सीता मैय्‌या तथा महावीर हनुमानजी ने भी दर्शन दिए थे। इस दर्शन का उल्लेख जीवनी में नहीं किया है। लेकिन कुछ शिष्यों के सन्मुख स्वयं गुरूजी ने इन दर्शनों का जिक्र किया था। मैं और एक दर्शन का जिक्र यहाँ अवश्य करना चाहता हूँ। स्वयं पू. श्री गुरूजी ने हमारे सामने बताया कि शेगांव के प्रसिद्ध संत गजानन महाराज ने कुछ साल पहले समाधि ली। लेकिन तेल्हारा में उनकी भेंट गजानन महाराज जी से हुई थी। इतना ही नही बल्कि योग विषय पर गहन चर्चा भी गुरूजी और गजानन महाराज के बीच हुई थी। पू. श्री गुरूजी का तेल्हारा गांव का निवास समाप्त होने आया था क्योंकि उनके बच्चे बड़े हो गये थे और तेल्हारा एक छोटा सा कसबा था। इसलिए उन्होंने तेल्हारा छोड़ दिया।

अब तक पू. श्री गुरूजी द्वारा अनेक लोग दीक्षित हुए थे। सभी जातियों के, धर्मों के तथा विभिन्न पंथों के लोगों ने पू. श्री गुरूजी से योग दीक्षा प्राप्त की। जहाँ जहाँ शिष्य परिवार है वहां गुरूपर्व का उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। सन् 1982 में गुरूपर्व के उत्सव का आयोजन वर्धा में किया गया था। इस गुरूपर्व के समय पू.गुरूजी भाव समाधि में ही थे। उत्सव के तीन दिन बाद वो अमरावती से स्व. श्री बाबूराव धर्माधिकारी के यहां गये। दूसरे दिन वर्धा के गुरूपर्व पर अशोक धर्माधिकारी से बातचीत चल ही रही थी कि पू. गुरूजी समाधि में डूब गये। कुछ समय बाद वो अशंतः सामान्य हो गये। लेकिन वो पूर्णतः सामान्य नहीं थे। उनकी स्थिति भाव समाधि जैसी थी। तीसरे दिन नाश्ते के पश्चात वो अपनी चारपाई पर लेटे थे। देखते–देखते उनकी चारों और दिव्य ज्योति प्रगट होने लगी। इस दिव्य ज्योति ने विशाल रूप प्रगट किया मानो सारे ब्रह्‌मांड में वह ज्योति फैल गई। पू. गुरूजी इस गोल्डन लाईट का बडा ही अद्‌भुत वर्णन करते थे। वो कहते थे न मनुष्य है, न प्राणी है, न पशु–पक्षी है, न कीट है, न वृक्ष है, न पहाड है, न प्राणी है, न कंकर है, कुछ भी नहीं है सिवाय वो दिव्य ज्योति। पू. श्री गुरूजी कहते थे कि वो ज्योति इतनी सुंदर है कि मेरी वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। वो कहते थे कि सारे ब्रहमांड में केवल वही गोल्डन लाईट था और उसके बीच में गुरूजी थे और उसी दिव्य ज्योति में समा गये। इस स्थिति में गुरूजी

करीब 3 घंटे थे। पू. श्री गुरूजी विश्वाकार हो गये। इसलिए वो कहते थे मैं ॐ हूँ। मैं ओंकार हूँ। मैं ब्रह्म हूँ। इस स्थिति को वेदों में तथा उपनिषदों में ''अहं ब्रह्मास्मि'' कहा गया है।

पू. श्री गुरूजी कहते थे कि ये मेरी अनुभूति को रामदास जी दासबोध ग्रंथ में प्रमाण देते है। ''जितुके होईल तितुके करावे। सत्कर्मा ने भरून द्यावे भूमंडळ''। सत्कर्म याने डिव्हाईन लाईट, यह अंतिम अनुभूति है। पू. श्री गुरूजी को महाराष्ट्र के अमरावती शहर में श्री धर्माधिकारी के यहा प्राप्त हुई। पू. श्री गुरूजी का आध्यात्मिक प्रवास तथा महाराष्ट्र का प्रवास साथ–साथ गंगाजी के प्रवाह जैसा बहते–बहते निर्मल, पवित्र तथा मंगलमय हो गया। इसका वर्णन महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत श्री तुकाराम महाराज अपने अभंग में कहते हैं ''आनंदाची डोही, आनंद तरंग।

पू. श्री गुरूजी के आध्यात्मिक प्रवास की शुरूआत महाराष्ट्र भूमि से हुई थी। आध्यात्मिक प्रवास का अंतिम पड़ाव भी महाराष्ट्र भूमि में ही पूर्ण हुआ। धन्य है महाराष्ट्र भूमि जिस पर पू. श्री गुरूजी जैसे जन्मसिद्ध योगी के चरण कमलों का पदस्पर्श हुआ। इसलिए महाराष्ट्र भूमि हमारे गुरुपरिवार के लिए स्वर्ग से भी महान है।

एक मुमुक्षु, वर्धा

तेल्हारा में भारत पदार्पण दिवस 2016

भारत पदार्पण दिवस के संबध में हम सभी जानते हैं कि बचपन में ही पू. गुरुजी ने भारत भूमि के दर्शन की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप उन्होनें अपने आदरणीय पिताजी से जिद की और 6 अक्टूबर19 को भारत आये। इस कार्यक्रम की शुरूआत वर्ष 1980 के आसपास हो चुकी थी परन्तु प्रथम बार वर्ष 2015 में दुर्ग में इसे धूमधाम से मनाया गया। उद्देश्य यह था कि दुर्ग में गुरूजी ने कई वर्ष निवास किया था और वहाँ एक कार्यक्रम होना आवश्यक था। इसी श्रृंखला में आयोजकों श्री प्रकाश मिश्र, दुर्ग, श्री योगेश तिवारी,रायपुर, श्री संजय गोस्वामी, नागपुर, आदि ने संकल्प किया कि तेल्हारा, जहाँ गुरुजी लगभग वर्ष 1940 से 1960 तक रहे और अपने गृहस्थ जीवन तथा साधना काल के महत्वपूर्ण वर्ष बिताये, में भी यह कार्यक्रम किया जावे। गुरुजी कई बार अत्यधिक प्रेम से तेल्हारा में बिताया समय और वहाँ के निवासियों को याद करते थे।

अकोला में गुरुजी डॉ. भारती के संपर्क मे आये थे। उनके सहायक के रूप मे कार्य किया व चिकित्सा विज्ञान तथा शरीर विज्ञान का 3 वर्षो तक अध्ययन किया। चिकित्सा विज्ञान में विशेष कर आयुर्वेद व होमियोपैथी में पूर्ण दक्षता प्राप्त किये । तत्पश्चात डॉ. भारती द्वारा उन्हे स्वयं का अलग कही औषधालय खोलने का सुझाव मिलने पर पैसे के अभाव में चिंतित गुरुजी ने अपने को कमरे में बद कर साधना में रेचक .कुम्भक का प्रयोग किया जिससे पूर्ण ज्ञान (कुण्डली जागृत) हो गया ।

इसके बाद वे तेल्हारा आये व यहां लगभग 20 वर्ष तक यहां के निवासियों की अध्यात्मिक व चिकित्सा संबंधी सहायता करते हुए रहे। यहां उनके विलक्षण आध्यात्मिक दशा का लोगो ने पल

पल अनुभव किया यहां के निवासी उनके प्रति अत्यन्त आदर व प्रेम रखते थे। यहां एक समय भगवान विटठ्ल जी (पंढरी नाथ) उनके घर आये व उनके साथ स्नान किये व भोजन किये। बच्चो के उपनयन संस्कार में 70 लोगो की भोजन व्यवस्था में 600 लोग शामिल हुए व भोजन किये । मजहर खान को बिना पूछे कुरान की आयतों का अर्थ बताना, ऐसे अनेक अलौकिक घटना क्रम दिव्य भक्ति का संकेत देते हैं। तेल्हारा श्रीसद्गुरूजी की विशेष कर्मभूमि रही है।

अतः श्री सदगुरूजी की प्रेरणा से 6 अक्टूबर 2016 को भारत पदार्पण दिवस का कार्यक्रम तेल्हारा में मनाया गया जिसमें पूरे भारत से शिष्य व भक्त शामिल हुए व यहाँ के स्थानीय निवासी भी सपरिवार इस कार्यक्रम में भाग लिये। कार्यक्रम के दौरान वहां श्री सदगुरूजी जिस–जिस स्थान में रहे वहाँ समूह मे पदयात्रा द्वारा भ्रमण करते हुए दर्शन किये। सेवा निवृत शिक्षक श्री कुलकर्णी ने अत्यन्त प्रेम व आदर के साथ अपने बचपन की वह घटना बताई जब गुरुजी ने अपनी दवाई से उन्हें मरणासन्न स्थिति से बचाया था और रोगी के पिता द्वारा इलाज के बदले दी गई सोने की अंगूठी न लेकर केवल 20 रूपये फीस ली थी तथा बालक कुलकर्णी को अपने दत्तक पुत्र के रूप में भी मान लिया था। इसी प्रकार स्वर्गीय मजहर खान के पुत्र ने भी पुरानी यादें साझा की। गुरुजी तेल्हारा में जिस मकान में रहते थे वहाँ के पास पड़ोस के वृद्ध लोगों ने भी अत्यधिक स्नेह से गुरुजी को याद किया और बताया कि किस प्रकार गुरुजी तानपुरा लेकर दिन भर संगीत में मग्न रहते थे। दिव्याम्बु निमज्जन में तेल्हारा के जिन जिन स्थानों और व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है वहाँ वहाँ कार्यक्रम में उपस्थित सभी परिवारजन गये और अत्यधिक आनंद प्राप्त किया।

यहाँ के निवासियों का आत्मिक प्रेम व सहयोग अतुलनीय रहा। कार्यक्रम बहुत सुंदर व सफल रहा। इसमे विशेष सहयोगी रहे – तेल्हारा वासी – सर्वश्री गिरीश मंत्री , राजेन्द्र फोफलिया, विजय राठी, संतोश राठी, हरीश तापड़िया , सुरेश मंत्री व प्रकाश तिंवर व गुरूपरिवार से विशेष कर – सर्वश्री जे.के. जैन ,डी.एस राय. डा. चन्द्रा रजक गुरूप्रसाद पाण्डेय, गजानन वाडयालकर परिवार ,नागरे जी, लक्ष्मी कांत शिर्के, उधोपुरी ,वीरेन्द्र गिरी गोस्वामी , मोहनपुरी गोस्वामी, राजू काण्णव , श्रीमति अनघा जी ,मोहन सिंह, विवेकानंद, विनोद पाण्डे , संजय चटर्जी, भारतेन्दु मिश्र , मनोज यादव, प्रभांक ठाकुर योगेश शर्मा एवं समस्त गुरूपरिवार का कार्यक्रम की सफलता में परोक्ष व अपरोक्ष सहयोग रहा।

कबीर का योग

कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्वग्रासी है। वह कुछ भी छोड़ना नहीं चाहते, इसीलिये वह ग्रहणशील हैं, वर्जनशील नहीं। इसीलिए उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, सूफी, वैष्णव, योगी प्रभृति सब साधनाओं को जोर से पकड़ रखा है। फिर भी उन मतों की संकीर्ण साम्प्रदायिकता ाकबीर के खुले पन से मेल नहीं खाती। इसीलिये कबीर इन सबको ही अपने ढंग से अपना सके हैं। उनके क्रियाकाण्ड, उनकी साधना और उनकी संज्ञाओं को भी कबीर ने अपेन विशेष भाव से व्यक्त किया है। कबीर भक्त हैं, प्रेमिक हैं, योगी हैं, मानवरस से भरपूर हैं, मैत्री, युक्ति आदि से परिपूर्ण हैं। इस तरह उन्होंने जिन मतवादों को ग्रहण किया है उनमें से प्रत्येक कुछ हद तक उनका गृहीत है, कुछ हद तक अपनी विशेष व्याख्या से उन्होंने अपने समान कर लिया है, कुछ हद तक परित्यक्त है और किसी हद तक उनके कठोर आघातों से आहत है। कबीर के योगमतवाद के सम्बंध में भी यही बात कही जा सकती है।

कबीर के अनेक पदों को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि ठीक पूर्ववर्ती योगियों की, यहाँ तक कि कभी–कभी हू–ब–हू वे ही बातें पढ़ रहे हैं। जैसे –

'प्रथमे गगन की पुहमी प्रथमें प्रभु प्रथमे पवन कि पाणी'।

कबीर की प्रश्नोत्तरी और प्रहेलिकाएँ बिलकुल प्राचीन योगियों के समान हैं। इसीलिये इन प्रहेलिकाओं को 'गोरखधन्धा' कहते हैं। कबीर का निम्नलिखित पद भी योगी–पदों के ही समान है– सुंनिमंडल में घर किया जैसे रहै सिचांनां। उलटि पवन कहाँ राखिये कोइ भरम बिचारै।। सांधै तीर पतालकूं, फिरि गगनहिं मारै। मूल दुआरै बंध्या बंधु। रबि ऊपर गहि राख्या चंदु।। पच्छम द्वारै सूरज तपै। मेर डंड सिर ऊपर बसै।। खिड़की ऊपर दसवा द्वार। कहि कबीर ताका अंत न पार।।

योग के संबंध में भी कबीर के वैचिन्यका अन्त नहीं। वह पवन उलटकर षट्–चक्रभेद करके शॅनय गगन में समाहित होना चाहते हैं। उलटे पवन षटचक्र बेधा मेरडंड सर पूरा। गगन गरजि मन सूँनि समाँनाँ बाजे अनहद तूरा।। कभी कहते हैं, 'मन को ही उलटकर उसमें भरना होगा। पवन उलटकर षट्चक्र वेध करके 'शून्य सुरति' में ही 'लय' लगाना होगा–

मन रे मनहीं उलटि समाँनाँ। उलटे पवन चक्र षट् बेधा सूँनि सुरति लै लागी।

कभी वह द्वादश कूपसे वनमाली के समान नीर– धारा ऊपर की ओर उलटकर सुषुम्णा का कूल पूर्ण कर देना चाहते हैं– यह धारा दस दिशाओं में ही फुलवारी पावेगी।

द्वादश कुआँ एक बनमाली उलटा नीर चलावै। सहज सुषमना कूल भरावै दह दिसि बाड़ी पावै।।

कभी– कभी ईधन जलाकर जिस प्रकार भट्टी से सुरा चुआ लेते हैं, उसी प्रकार उनतरके महारस को गगन में चुआकर उसी सुरा में मत्त होना चाहते हैं। परन्तु अश्चर्य यह है कि इस गगनरस को उन्होंने भक्त के समान 'रामरस' बना लिया है। उनके योग और भक्ति सम्बन्धी मत इसी प्रकार युक्त हैं। इसी रामरस में मतवाला होना ही कबीर की एकान्तवासना है। गगन साल चुए मेरी भाठी। संचि महारस तन भया काठी। वाकैकहिये सहज मतवारा। पीवत रामरस ज्ञान बिचारा।

'चन्द्र और सूर्य ये दोनों ज्योति के स्वरूप हैं। इसी ज्योति के अन्तर में अनुपम ब्रम्हा विराजमान हैं। ऐ ज्ञानी, वहीं पर ब्रम्हं विचार करो– चंद सूरज दुई जोति सरूप। जोति अन्तरि ब्रम्हा अनूप।। करू रे ज्ञानी ब्रम्हा बिचारू। कभी–कभी कबीर ने योगी के भेषको रूपक की भाँति ग्रहण करके, सुरति–रिति आदि द्वारा सजाया है। अवधू जोगी जगथैं न्यारा। मुद्रा निरति सुरति करि सींगी नाद न खंडै धारा।। निरति मुद्रा और सुरति सिंगासे सज्जित होकर वह योगी जगत् में 'चेतन–चौकी' पर बैठकर उस मधुर महारस को पान करता है, जिस महारास को इस अन्र की भट्टी में चुआया गया है। वहाँ बैठकर वह दुनिया की ओर ताकता भी नहीं– बसै गगन में दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा। चढ़ि अकास आसन नहीं छाड़ैं, पीवै महारस मीठा।। गगन भट्टी चुआकर जिस अमृतरस का निर्झर झरा करता है, उसे ही पान करना होगा। रस में ही झरा करता है वह रस। गगन ही भाँठी सींगी करि चूँगी कनक कलस एक पावा। तहुआँ चवै अमृत रस नीझर रसही में रस च्वावा।। यहीं पर मन को मत्त कर देनेवाला 'रामरसायन'' पान करना होगा।

दुनिया में सब भ्रमकी साधना में भूले हैं– यह दुनियाँ कांइ भरम भुलानी मैं राम रसाइन माता।। गगन मण्डल में घर करना होगा। क्योंकि वहीं सदा अमृत झरा करा है, सदानन्द उपजता है कडनालका रस पान करना होता है – अवधू गगनमंडल घर कीजै। अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनालि रस पीवै।।

कभी–कभी कबीर अधोधारा को ऊर्ध्व में उठाने के लिये जिन सब आयोजनों की ज़रूरत है उन्हें रूपक के रूप में सजाकर लय, पवन, मन, सत्य, सुरति प्रभृति की सहायकता से सहज ही उस धारा में चलाना चाहते हैं– ल्यौकी सेज पौन का ढीकूँ मन मटकाज बनाया। स्तकी पाटि सुरति का चाठा सहज नीर मुक लाया।। कभी कबीर का यह योग सम्बन्धी सारा आयोजन रूपक के समान ही है। यद्यपि वह कहते हैं– 'है अवधूत मेरा मन मत्त हो गया है, उन्मनिपर चढ़कर मनने उस महारस को मग्न होकर पान किया है, इसीलिये त्रिभुवन दीप्त हो गया है, उज्जवल हो गया है– अवधू मेरा मन मतिवारा। उन्मनि चढ़या मगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा। किन्तु इस महारस को चुआने के लिये उन्होंने ज्ञान को किया है गुड़ और ध्यान को किया है महुआ। मन धारा को भट्ट बनाया है– गुड़ करि ज्ञान ध्यान करि महुआ भाठी मन धारा।

एक बूँद भरि देइ रामरस ज्यूँ भरि देइ कलाली। काया कलाली लाहनि करिहूँ गुरू शबद गुड़ कीन्हाँ। काम क्रोध मोह मद मंछर काटि काटि कस दीन्हाँ। योगियों का काम ही है, सारंगी बजाकर गान के सुर में सबके चित्त को जागृत करना। यह बात भी कबीर रूपक से दिखाना चाहते हैं – वह योगी इस तनुयन्त्र को बजाता है। इसीलिये धर्म के दण्ड में, सत्य की खूँटी में, तत्व की ताँत बाँधकर यह यन्त्र रचा गया है। मन के निश्चल आसनपर बैठकर रसनासे जपो उस रसको। इस प्रकार संसार का आवागमन छूट जाता है।

जोगिया तनकौ जन्त्र बजाइ, ज्यूँ तेरा आवागमन मिटाइ।।

तन करि ताँति धर्म करि डॉड़ी, सतकी सारि लगाइ।

मन करि निहचल आँसन निहचल, रसनाँ रस उपजाइ।।

उन दिनों एक तरफ तो थी प्रबल मुसलमानी साधना और दूसरी ओर थी योगियों की योग–साधना। कबीर ने दोनों को ही स्वीकार किया है, पर अपने रास्ते से । मुसलमान धर्म पर उन्होंने कम आघात नहीं किया । योगियों के ढोंग पर भी उन्होंने कठोर रूप से आघात किया है। ' जोगी पड़े कि जोग कहै घर दूर है' इत्यादि कबीर के ही तीव्र कशाघात हैं। मन–ही–मन शायद उन्होंने समझा था कि आघात करने से कोई लाभी नहीं, इसीलिये उन सारी बातों को रूपक के द्वारा व्याख्या कर आत्मसात् कर लेना चाहा है।

मुसलमान के लिए उनका कहना था कि मन को कर लो मक्का और देही को करो किबला। इस काया – मसज़िद में ही तो दस दरवाजे हैं, वहीं जाकर बाँग दिया करो–

मन करि मक्का किबला करि देही। बोलनहार परम गुरू एही।

कहु रे मुल्ला बाँग निवाज। एकै मसीति दसै दरवाज।।

उन दिनों के साधारण लोक–प्रचलित योगमतवादी यागियों के प्रति भी उनका प्रहार मामूली नहीं है। जोगी दण्ड, मुद्रा, कन्था प्रभृति लेकर भ्रमका भेख धरे घूमा करते हैं। अरे पागल! आसन और पवन दूर कर दे और कपट छोड़कर नित्य हरि को भज। जिसे तू चाहता है वह स्वयं त्रिभुवन को भोग रहे है, फिर संसार में तुम्हारी इस योग साधना अर्थ क्या है?

डंडा मुद्रा खिंथा आधारी। भ्रम के भाइ भवै भेखधारी।।

टासन पवन दूरि करि बवरे। छोड़ि कपट नित हरि भज बवरे।।

जिही तू जाचहि सो त्रिभुवन भोगी। कहि कबीर कैसो जग जोगी।

फिर इसी योगी को समझाकर वह अपना लेते हैं– 'पागल! मन की मैल छोड़ दे। सिग्ड़ा , मुद्रा वगैरह दिखाकर लोगों के ठगने से क्या लाभ है?विभूति लगाने से ही क्या होता है?'

आसन पवन कियै दिट् रहु रे। मनका मैल छाँडि दे बौरे।।

क्या सिंगी मुद्रा चमकायें। क्या बिभूति सब अंग लगायें।।

इसके बाद रूपक दिखाकर वह योगी के मतको आत्मसात् ही कर लेना चाहते हैं। 'वही तो योगी है, जिसकी मुद्रा है मन में, अपनी साधना में वह रात दिन जगा रहता है। मन में ही उसका आसन और मन में ही उसकी स्थिति, मन में ही उसका जप–तप है, मन में ही बात–चीत है। मन में ही उसका खप्पर, मन में ही सिंज, वहीं पर अनाहत नाद भी बजाता है, पंच्चको दगध करके ही वह विभूति बनाता है, कबीर कहते है, वहीं तो जीतेंगा लंका' –

सो जोगी जाके मन मैं मुद्रा । रात दिवस ना करइ निद्रा।।

मन में आसन मन में रहनाँ। मन का जप तप मनसूँ कहनाँ।।

मन में खपरा मन में सींगी। अनहद बेन बजावै रंगी।।

पंच पर जारि भसम करि भूका। कहै कबीर सो लहसै लंका।।

कबीर ने उसी को सच्चा योगी बताया है जो लोक प्रचलित योगी पन के अतीत है। अर्थात

सारे संकीर्ण विधि–विधानों से मुक्त साधक ही कबीर का चिर आकांक्षित साधक है। ऐसे साधक का न तो कोई दल होता है और न कोई सम्प्रदाय। दल बाँधते ही नाना मिथ्या आवर्जना अधिकार जमा ालेती हैं। इसीलिये उनका कहना है 'बाबा! जिस योगी का न मेला है और न तीर्थ, वही एक शब्दहीन योगी है। उसके पास झोली नहीं, पत्र नहीं, विभूति नहीं, बटुआ भी नहीं, वही अनाहत वेन बजाता है–

बाबा जोगी एक अकेला। जाके तीरथ बरत न मेला।।
झोली पत्र विभूति न बटवा। अनहद बेन बजावै।।

ऐसा ही योगी तो 'मनका मानुष' है। इसे बाहर पाया कैसे जाय?इस योगी का मर्म जो समझता है वही राम में रमता है। त्रिभुवन उसे उपलब्ध होता है। प्रकट कन्था में छिपा हुआ है वह गुप्त आधारी। उसमें जो मूर्ति है वही तो इस जीवन का प्रिय है। प्रभु निकट ही हैं, लोग उन्हें दूर खोजा करते हैं। ज्ञानगुहामें भर लो सींगा। कबीर कहते हैं कि जो भक्त प्रतिक्षण अमृत–वल्लीका रस पान करता है वही युग–युग जीता है।

जो जोगिया की जुगति बूझै। राम रमैं ताको त्रिभुवन सूझे।।
परगट कंथा गुपुत अधारी। तामैं मूरति जीवनि प्यारी।।
है प्रभु नेंरें खेजैं दूरी। ग्याँनगुफा मैं सींगी पूरी।।
अमर बेलि को छिन छिन पीवै। कहैं कबीर सो जुग जुग जीवै।।

सचमुच ही जो योगी है उसकी साधना विश्वब्रह्माण्ड को लेकर है। वह एक मुठ्ठी भीख के लिये घर छोड़कर नहीं निकलता। कबीर कहते हैं कि वही योगी तो असल योगी है जो नवखण्ड पृथिवीको भिक्षा में माँग लेता है। ज्ञान ही उसका कन्था है। ध्यान की सुई से 'शबद' के तागे से वह उसकी रचना करता है। पच्चतत्व के सन्धान में वह निकल पड़ता है गुरू के रास्ते। काया की धुनी रमाकर वह दृष्टि–अग्नि जला रखता है 'दया है उसकी खड़ाऊँ– सब योगों का सार राम नाम' ही उसकी काया है, वही उसका प्राण है। जिसने जीवन में उनकी कृपा पायी है वही सत्य की घोषणा कर जाता है–

नव खंड की प्रथमी माँगै सो जोगी जगसारा।
खिंथा ग्यान ध्यान करि सूई सबद ताग मथि घालै।
पंचतत्व की करि मिरणानी गुरू के मारग चालै।
दया फाहुरी काया करि धूई दृष्टि की अग्नि जलावै।
सभ जोग तन राम नाम है जिसका पिंड पराना।
कहु कबीर जे किरपा धारै देइ सचा निसाना।।

'वही तो जोगी है जिसका सहज भाव है, अखण्ड प्रेम की भिक्षा ही जिसका उपजीव्य है। अनाहत शब्द ही जिसका सिंगानाद है। जिसके न तो काम–क्रोध हैं और न विषयवाद' इत्यादि –

सो जोगी जाके सहज भाइ। अकल प्रीतिकी भीख खाई।।

सबद अनाहद सींगी नाद। काम क्रोध विषिया न बाद।।

ऐसा आत्मानन्द योगी ही महारस पान करके अमृतरस सम्भोग करता है–

आत्मा अनन्दी जोगी। पीवै महारस अमृत भोगी।।

योग की यह परिपूर्ण दृष्टि जब आती है तो फिर संसार के इस मिट्‌टी के घर में मन नहीं रहना चाहता। उस समय श्री हरि के साथ युक्त होकर रहने की ही व्याकुलता दिखायी देती है–

इब न रहूँ माटी के घर मैं। इब मैं जाइ रहूँ मिलि हरि मैं।।

सारे योग का मूलगत अर्थ और उसकी अन्तिम परिणति भगवान के साथ प्रेम–मिलन में है। जिस कबीर ने सर्व धर्मों का समन्वय करना चाहा है, उनसे क्या हम किसी साम्प्रदायिक साधना की आशा कर सकते हैं?कबीर की महादृष्टि में सभी साधनाएँ एकत्र हुई हैं। बाघ और बकरी को एक घाट वही पानी पिला सकता है जिसमें सामर्थ्य है। कबीर की साधना का माहात्म्य तभी समझ में आता है जब हम हिन्दू और मुसलमान साधना को एकत्र संगत देखते हैं। उन्होंने योग और भक्ति को परस्पर से आसक्त किया है। यह बात, किन्तु, ठीक है कि कबीर के निकट ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति सभी साधनाएँ नदियों के समान हैं। सब साधनाओं का अवसान हुआ है भगवत्प्रेम क समुद्र में।

(कल्याण से उद्‌धृत)

ज्ञान की भूमिकाएँ

महर्षियों ने ज्ञान की सात भूमिकाएँ कही हैं – पहली शुभेच्छा, दूसरी विचारणा, तीसरी तनुमानसा, चौथी सत्वापत्ति, पाँचवीं असंसक्ति, छठी पदार्थाभावनी ओर सातवीं सुर्यगा।

1. शुभेच्छा – नित्यानित्यवस्तुविवेकादिपुरः सरा फल–पर्यवसायिनी मोक्षेच्छा शुभेच्छा।

'नित्यानित्यवस्तुविवेक – वैराग्यादि के द्वारा सिद्ध हुई फल में पर्यवसित होने वाली मोक्ष की इच्छा अर्थात् विविदिषा, मुमुक्षुता, मोक्ष के लिये आतु इच्छा ही शुभेच्छा है।'

2. विचारणा– गुरूमुपसृत्य वेदान्तवाक्यविचारात्मक– श्रवणमननात्मिका वृत्तिः सुविचारणा।

'श्रीसद्‌गुरू के समीप वेदान्तवाक्य के श्रवण–मनन करने वाली जो अन्तःकरण की वृत्ति है वह सुविचारणा कहलाती है।'

3. तनुमानसा – निदिध्यासनाभ्यासेन मनस एकाग्रतया सूक्ष्मवस्तुग्रहणयोग्यता तनुमानसा।

निदिध्यासन (ध्यान और उपासना के अभ्यास)– से मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है, उसके द्वारा जो सूक्ष्म वस्तु के ग्रहण करने की सामर्थ्य (योग्यता) प्राप्त होती है उसे तनुमानसा कहते हैं।'

ये तीन भूमिकाएँ जाग्रत भूमिकाएँ कहलाती हैं। क्योंकि इनमें जीव और ब्रह्म का भेद स्पष्ट ज्ञात होता है। इनमें स्थित व्यक्ति साधक माना जाता है, ज्ञानी नहीं। क्योंकि–

एतस्मिन्नवस्थात्रये ज्ञानोत्पादनयोग्यतामात्रं संपद्यते न च ज्ञानमुत्पद्यते।

इन तीनों अवस्थाओं में तत्वज्ञान के प्राप्ति की योग्यता प्राप्त होती है, ब्रह्मज्ञान नहीं प्राप्त होता, अर्थात् इन तीन भूमिकाओं में विचरता हुआ पुरूष ब्रह्मा में अभेद भाव को प्राप्त नहीं होता। परन्तु ज्ञान की प्राप्ति के यि इनकी पहले अत्यन्त आवश्यकता होने के कारण इनकी गणना अज्ञान की भूमिका में न होकर ज्ञान की भूमिका में ही रहती है।

ज्ञानभूमिकात्वं तु ज्ञानेतरकर्माद्यनधिकारित्वे सति ज्ञानस्यैवाधिकारित्वात्।

इन तीन भूमिकाओं में स्थित पुरूष ज्ञान से इतर कर्मादिका अधिकारी नहीं होता, प्रत्युत केवल ज्ञान – तत्वज्ञान का ही अधिकारी होता है।

4. सत्वापत्ति – निर्विकल्पब्रह्मात्मैक्यसाक्षात्कारः सत्वापत्तिः।

संशयविपर्ययरहित ब्रह्म और आत्मा के तादात्म्य अर्थात् ब्रह्मस्वरूपैकात्मत्वका अपरोक्ष अनुभव ही सत्वापत्ति नाम की चतुर्थ भूमिका है। यह सिद्धावस्था है। इस भूमिका ामें स्थित महापुरूष को 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का वास्तविक अनुभव हो जाता है। यद्यपि इस दशा को प्राप्त पुरूष को जगत् का भान होता है और शरीर तथा अन्तः करणद्वारा सभी क्रियाएँ सावधानी के साथ होती हैं, तथापि मायावश जीव जिस जगत् को सत्य स्वरूप देखता है, उस जगत् के मिथ्यात्व का उसे यथार्थ अनुभव हो गया है। यह भूमिका स्वप्न कहलाती है।

5. असंसक्ति – सविकल्पकसमाध्यभ्यासेन निरूद्धे मनसि निर्विकल्पकसमाध्यवस्थासंसक्तिः।

सविकल्प समाधि के अभ्यास के द्वारा मानसिक वृत्तियों के निरोध से जो निर्विकल्पक समाधि की अवस्था होती है, वही असंसक्ति कहलाती है। इसे सुषुप्ति भूमिका भी कहते हैं, क्योंकि इस भूमिका में सुषुप्ति– अवस्था के समान ब्रह्म से अभेद भाव प्राप्त हो जाता है। यह जगत्प्रपच्च को भूला रहता है, परन्तु समय पर स्वयं ही उठता है ओर किसी के पूछने पर उपदेश करता है तथा देहनिर्वाह की क्रिया भी करता है।

अस्यामवस्थायां योगी स्वयमेव व्युत्ष्ठिते।

6. पदार्थाभावनी – असंसक्तिभूमिकाभ्यासपाटवाच्चिरं प्रपच्चापरिस्फूर्त्यवस्था पदार्थाभवनी।

असंसक्ति नामक पाँचवीं भूमिका के परिपाक से प्राप्त पटुता के कारण दीर्घकाल तक प्रपच्च के स्फुरण का अभाव पदार्थाभावनी भूमिका कहलाती है। पाँचवीं भूमिका में विश्वप्रपच्चका विस्मरण अल्पकाल तक ही रहता है और छठी भूमिका ामें यह स्थिति दीर्घकालपर्यन्त रह सकती है। इन दोनों भूमिकाओं में केवल समय का ही भेद होता है। इस भूमिका को गाढ़ सुषुप्ति के नाम से पुकारते हैं। इस भूमिका में स्थित महापुरूष देहनिर्वाहादि क्रिया भी स्वतः व्युत्थित दशा में आकर नहीं करता, परन्तु –

अस्यामवस्थायां परप्रयत्नेन योगी व्युत्ष्ठिते। अर्थात् अन्य के द्वारा व्युत्थान पाकर वह क्रिया करता है। दूसरा कोई मुँह में ग्रास दे देता है तो दाँत और जीभ से खाने की क्रिया हो जाी है। इत्यादि।

7. तुरीया–तुर्यगा – ब्रह्मध्यानावस्थस्य पुनः पदार्थान्तरा परिस्फुर्तिस्तुरीया।
ब्रह्मचिन्तन में निमग्न इस महापुरूष को पुनः किसीभी समय किसी भी अन्य पर्दार्ो की परिस्फुर्तिका न होना, यही ज्ञान की सप्तम भूमिका तुरीया कहलाती है। इस स्थिति को प्राप्त महात्मा स्वेच्छापूर्वक या परेच्छापूर्वक व्युत्थान को प्राप्त ही नहीं होता, केवल एक ही स्थिति ब्रह्मीभूत स्थिति में ही सदा रमण करता है।
अस्यामवस्थायां योगी न स्वतो नापि परकीयप्रयत्नेन व्युत्तिष्ठते केवलं ब्रह्मीभूत एवं भवति।

इस प्रकार ज्ञान की सात भूमिकाओं में प्रथम करने के निमित्त बनायी गयी हैं। चौथी से सातवीं भूमिका तक ज्ञान की दशा है और यह उत्तरोत्तर उन्नत दशा की भूमिका है। चतुर्थ भूमिका में ही तत्वज्ञान का यथार्थ प्रादुर्भाव हो जाता है ओर वही तत्वज्ञान अन्तिम चारों भूमिकाओं में स्थित रहता है। व्युत्थान दशा के तारतम्य से इनमें भेद माना गया है।

शास्त्र कहता है– ' ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।' अतः ब्रह्मके जानने वालों को ज्ञानी, तत्वज्ञानी, आत्माज्ञानी की संज्ञा से शास्त्रों ने स्थान–स्थान पर उल्लेख किया है–

एताः सत्वापत्याद्याश्चतस्त्रों भूमिका उपं ब्रह्मविद्ब्रह्म
विद्वरब्रह्मविद्वरीयोब्रह्मविद्वरिष्ठेत्येतैर्नामभिर्यथाक्रमेण पूर्व व्याख्याताः।।

इस प्रकार सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावनी और तुरीया– इन चार भूमिकाओं में स्थिति महात्मा क्रमशः ब्रह्मविद्, ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद्वरीयान् और ब्रह्मविद्वरिष्ठ कहलाता है।'

शब्दज्ञान ने पारंगत। जो ब्रह्मानन्दे सदा डुल्लत।
शिष्य प्रबोधनीं समर्थ। तो मूर्तिमंत स्वरूप माझें।। (एकनाथी भागवत)

अर्थात् श्रीगुरू, जो शब्दज्ञान में पारग्त हैं और ब्रह्मानन्द में सदा घूमते रहते हैं और जो शिष्यों को प्रबुद्ध करने में समर्थ होते हैं, वह भगवान् के ही मूर्तिमान रूप हैं। ऐसे गुरू की शरण में जाकर ज्ञान प्राप्त करना होता है। ग्रन्थों के अध्ययन से केवल रूचि होती है। यथार्थ ज्ञान श्रोत्रिय ब्रह्म।

प्रश्न : पिछले दिनों इतनी अधिक समस्याएँ मेरे सामने रही हैं। पता नहीं, उन्हें हँसी–खुशी कैसे हल किया जाये?
उत्तर : 'स्थायी' और 'सच्चा' सुख पाने का एकमात्र उपाय है, 'भागवत कृपा' पर पूर्ण और ऐकान्तिक निर्भरता। अगर हम अपने सुख को अक्षुण्ण और पवित्र रखना चाहें तो हमें उसकी और प्रतिकूल विचारों को आकर्षित न करने पर पूरा ध्यान देना चाहिये। हमेशा सुखी रहना, मेघविहीन और उतार–चढ़ावरहित सुख–अन्य सभी चीज़ों की अपेक्षा इसे पाना सबसे ज़्यादा कठिन है।

उद्घृत

योगी का मनोभाव

जब तुम भगवान के पास जाते हो तो तुम्हें समस्त मानसिक धारणाओं का त्याग देना चाहिये, किन्तु, इसके बदले तुम अपनी धारणाओं को भगवान् पर लादना चाहते हो और चाहते हो कि वे उनका अनुसरण करें। योगी के लिए सच्चा मनोभाव तो केवल यही है कि वह नमनशील हो और भगवान् की ओर से जो भी आदेश मिले उसका पालन करने के लिए तैयार रहे, उसके लिए कुछ भी अनिवार्य न हो और न ही उसे कोई चीज़ भार लगे। अक्सर जो लोग आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहते हैं उनका पहला आवेश यही होता है कि उनके पास जो कुछ हो उसे फेंक दें, किन्तु वे ऐसा करते हैं एक बोझ से छुटकारा पा जाने के लिए, भगवान् के अर्पण करने के लिए नहीं। जिनके पास धन है तथा जिनके इर्द–गिर्द अमीरी और भोग की सामग्रियाँ हैं, वे जब भगवान् की ओर मुड़ते हैं तो तुरंत उनकी प्रवृति इन सब चीज़ों से दूर भागने की होती है–अथवा, जैसा कि वे कहते हैं: ''इनके बन्धन से बच निकलने'' की होती है। परन्तु यह ग़लत प्रवृति है, तुम्हें यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि जो चीज़ें तुम्हारे पास हैं वे तुम्हारी हैं–वे तो भगवान् की हैं। यदि भगवान् चाहते हैं कि तुम किसी चीज़ का भोग करो तो भोग कर लो, किन्तु दूसरे ही क्षण, यदि उसे छोड़ना पड़े तो उसके लिए भी प्रसन्नचित तैयार रहो।

यदि तुम अपने मन को दस मिनट तक गहराई से देखो तो तुम्हें पता लगेगा कि दस में से नौ विचार भय से भरे हुए हैं। समस्त भय से मुक्ति अनवरत प्रयास और साधना द्वारा ही सम्भव है।

साधना और प्रयास के द्वारा यदि तुमने अपने मन और प्राण को आशंका तथा भय से मुक्त कर भी लिया तो भी शरीर को मना लेना अधिक कठिन होता है। परन्तु यह करना भी ज़रूरी है। एक बार जब तुम योग–मार्ग में प्रवेश करते हो तो तुम्हें समस्त भयों से मुक्त हो जाना चाहिये–अपने मन के भयों से, अपने प्राण के भयों से, एक–एक कोषाणु तक में भरे शरीर के भयों से मुक्त होना चाहिये। योग–मार्ग में तुम्हें जो ठोकरें खानी पड़ती हैं और आघात सहने पड़ते हैं उनका एक उपयोग यह भी है कि वे तुम्हें समस्त भयों से मुक्त कर दें। भय के कारण उस समय तक तुम पर बारम्बार हमला करते रहते हैं जब तक तुम इस योग्य न हो जाओ कि उनके सामने स्वतन्त्र, उदासीन, अछूते और शुद्ध होकर खड़े रह सको। किसी को समुद्र का भय होता है, कोई आग से डरता है। हो सकता है कि जो व्यक्ति अग्नि से डरता है उसे एक के बाद एक अनेकों भीषण अग्निकाण्डों का सामना करना पड़े, यहाँ तक कि वह इतना अभ्यस्त हो जाये कि इस काण्ड से उसके शरीर का एक भी कोषाणु तक न काँपे। जिस चीज़ से तुम्हारे अन्दर त्रास पैदा होता हो वह उस समय तक बारम्बार आती रहती है जब तक कि त्रास बिल्कुल बन्द न हो जाये। जो रूपान्तरित होना चाहता है और जो इस योग–मार्ग का साधक है उसे पूरी तरह से भयमुक्त होना ही पड़ेगा, उसे ऐसा बनना पड़ेगा कि कोई, किसी प्रकार की चीज़ उसे उसकी प्रकृति के किसी भी भाग में छू या हिला न सके।

(अग्नि शिखा से उद्धृत)

कठिनाई के समय (अग्निशिखा से उद्‌घृत)

योग का पथ लम्बा है और इसमें इंच–इंच पर विजय पाते आगे बढ़ना होता है। इस पथ में साधक के लिए सबसे आवश्यक सम्बल है– असीम धैर्य और अनन्य निष्ठा; वह धैर्य और वह निष्ठा जो सभी कठिनाइयों, कष्टों, असफलताओं, हारों, निराशाओं और अवसादों में अक्षुण्ण, अविचल रहती है। आरम्भ में तो नाना प्रकार की कठिनाइयां, बाधाएं और विघ्न आते ही हैं और वे भी तरह–तरह के, नाना रूप और वेश धारण कर; परन्तु यदि साधक अपने उद्‌देश्य के प्रति निष्ठावान्‌ है और भगवती शक्ति में उसे विश्वास है तो सारी कठिनाइयां और बाधाएं हवा हो जाती हैं। साधक को क्रमशः शरीर, मन, प्राण में भगवती शक्ति और भागवत चेतना की अनुभूति होती रहनी चाहिये।

इस योग में समाधि या ध्यान की अपेक्षा सहज–स्वाभाविक जीवन पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये। समाधि या ध्यान की प्रगाढ़ता सहज–सजग जीवन में उतर सके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। ध्यान की अवस्था में नाना प्रकार के विचारों का जंजाल फैल जाता है, इसका कारण है मानव प्रकृति की अभ्यास–परम्परा। प्रायः सभी साधकों को इस कठिनाई का सामना करना ही पड़ता है। इस पर विजय पाने के कई उपाय हैं– एक है, तटस्थ भाव से विचारों के प्रवाह को देखना। दूसरा है, विचारो को अपना न समझ कर बाहरी और ऊपरी समझना और उनके साथ न हो लेना। तीसरा है, विचारों के उद्‌गम को देखना, उन्हें वहीं पकड़ना और उन्हें बाहर निकाल फेंकना। यह कठिन है अवश्य, पर है बड़ा ही कारगर उपाय।

सदा अपनी दुर्बलताओं और त्रृटियों तथा दोषों का चिन्तन करते रहना भी एक बहुत बुरी लत है। तुम्हारी दृष्टि सदा अपने उद्‌देश्य पर, आदर्श पर, लक्ष्य पर होनी चाहिये। दुर्बलताओं और त्रृटियों के चिन्तन से मन कमजोर होता है, व्यर्थ ही वह निराशा के चक्कर में पड़ कर अवसाद का शिकार हो जाता है। प्रकाश पर दृष्टि रखो, सामने के अन्धकार से घिरो मत। श्रद्धा–विश्वास, प्रफुल्लता, अन्तिम विजय में आस्था– ये ही सहायक हैं जिनसे इस पथ में उन्नति सहज और शीघ्रतर होती है। यदि कभी उन्नति रूकती या अवरूद्ध प्रतीत हो तो घबड़ाने या हिम्मत हारने की कोई बात नहीं है। चाहिये यह कि ऐसे क्षणों में तुम अपने–आपमें सुशान्त और सुस्थिर हो जाओ और उसी भगवती शक्ति, भगवती चेतना का आवाहन करो सम्पूर्ण हृदय से; और तुम देखोगे कि तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति अधिक गहरी और गभीर तथा पूर्णतर होगी। हिम्मत हार कर धुटने मत देक दो। शान्ति, स्थिरता और आन्तरिक पुकार से भगवान के प्रति अपने आपको खोल दो, एकमात्र और पूर्णतः भगवान्‌ के ही प्रति।

मनुष्य की प्रकृति एक सीधी–सादी रेखा नहीं है– वह है बहुत जटिल, और अनेक हैं उसके स्तर। यदि तुम्हारा हृत्पुरूष जाग्रत्‌ है और यदि उसमें एकमात्र भगवान की ही चाह और पुकार है तो निश्चय ही तुम्हारी सारी कठिनाइयां विलीन हो जायेंगी; तुम्हारी निम्न प्रकृति का सारा आग्रह व्यर्थ हो जायेगा। यदि तुम अपने हृदय के अन्दर मां की शक्ति का आवाहन कर सको और

अपनी शक्ति की अपेक्षा उस पर अधिक विश्वास रख सको तो सच मानो, तुम्हारी विजय निश्चित है और सारी आसुरी शक्तियां परास्त होकर नेस्तनाबूद हो जायेंगी।

निम्न प्रकृति का यह स्वभाव है कि वह प्रकाश और सत्य से धबड़ाती है, उनसे भागती है। इसलिए आसुरी शक्तियां निम्न प्रकृति पर ही आसन जमाती हैं और उससे मनमाना काम लेती हैं। इससे छूटने का एक अमोघ उपाय बताता हूं , एकदम अमोघ– और वह है आत्महीनता के भाव से बचो। अपने को हेय, तुचछ, क्षुद्र और पामर समझना छोड़ो। इस प्रकार के विचारों से लाभ तो कुछ होता नहीं, हां, हानि बहुत हो जाती है; सारी उन्नति रूक जाती है। धर्म के नाम पर पाप–भावना पर बहुत जोर दिया जाता रहा है– 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' – पापी कौन बड़ौ है मोते सब पतितन में नामी।' ऐसे विचारों का बड़े उत्साह से प्रचार किया जाता रहा है, परन्तु अवश्य हीये विचार योग–पथ के बहुत बड़े बाधक हैं। योगी के लिए इन बातों पर तूल देने या सिर धुनने की कतई आवश्यकता है ही नहीं। वह यह जानता है कि ये सब निम्न प्रकृति के विकार हैं और इसलिए वह शान्ति, स्थिरता और दृढ़ता के साथ इनका वर्जन तथा परित्याग कर देता है क्योंकि उसका भगवती शक्ति में अचल–अखण्ड विश्वास है। योगी कभी भी निम्न प्रकृति की क्रियाओं के कारण क्षुब्ध या चच्चल नहीं होता और न निराश या खिन्न ही होता है। वह न उनके द्वारा उत्तेजित ही होता है और न परास्त ही। वह तटस्थ होकर इस सारी हलचल को देखता भर है और चुपचाप अपने ह्रदय के ह्रदय में भगवान को पुकारता है।

योग के साधक के लिए नियम यह है कि निराशा और अवसाद के फेर में वह पड़े ही नहीं। सदा सजग और सावधान होकर इसके 'कारण' को ढूंढ निकाले और कारण के कांटे को ही निकाल फेंके, और कारण की खोज की जाये तो पता चलेगा कि कारण अपने ही अन्दर है–कहीं मन की मांग, प्राणों की चाह, कोई प्रच्छन्न वासना, कोई दुर्दमनीय लालसा। उसकी पूर्ति में सम्मोह और अपूर्ति में नैराश्य। योग में वासना की सन्तुष्टि या अशुभ दिशा में भाव–प्रवर्तन एक भयंकर परिणाम का कारण बन जाता है। इसलिए अपने अन्दर जाओ, अपने अन्तर में निवास करो; बाहर–बाहर सतह पर तैरते मत रहो। निम्न प्रकृति की हलचलों से 'ह्रत्पुरूष' पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता–वह सदा ही शुद्ध, बुद्ध, निरज्जन है– उसी के साथ अभिन्न होकर रहो। यही 'स्व' में निवास है।

कठिनाइयों का सामना करने का एक सरल तरीका यह है कि थाड़ा पीछे हट कर तटस्थ भाव धारण कर लो, असंग हो जाओ, उन्हें अपनी स्वीकृति मत दो। अपने अन्दर उस उच्च भावभूमि पर पहुंचो जहां निम्न प्रकृति की लहरें पहुंच नहीं सकतीं। 'योगस्थः कुरू कर्माणि' यही है। अपने ह्रद्देश में भगवान को पाना, पहचानना और उन्हीं में स्थित होना 'योगस्थ' होना है। यही योग–जीवन का मूलाधार है।

बाह्य विषमताओं और संघर्षों से पीछे हट कर जब तुम 'योगस्थ' होने की कला में निष्णात हो जाओगे, जब तुम अपने 'अन्दर' जाकर भगवान को पुकारोगे तो तुम तत्काल यह अनुभव करोगे कि भगवान की शक्ति तुम्हें सहायता पहुंचाने के लिए तत्पर थी, तुम भगवान की उपस्थिति अपने अन्दर अनुभव करोगे और अनुभव करोगे उस उपस्थिति के साथ–ही–साथ एक दिव्य शान्ति, स्थिरता, पवित्रता, शक्ति, ज्योति, विस्तार और आनन्द, जो तुम्हारे अन्दर उतरना औंर फैलना चाहते हैं। इस शान्ति में स्थिर होना, ठहरना, रहना सीखो फिर देखोगे कि पहले दिव्य पवित्रता और समता आयेंगी और फिर भगवान की पूरी शक्ति। इस प्रक्रिया में तुम सदा–सदैव मां की उपस्थिति का अनीुभव करते रहोगे। तुम्हें ऐसा लगेगा कि मां सदा तुम्हारे पास हैं।

अपूर्णताओं से घबड़ाने की जरूरत नहीं। अपूर्णता यदि योगपथ में केवल बाधक होने के लिए ही होती तो फिर इस पर चलता ही कौन? कौन है एकदम पूर्ण? इसलिए अपनी अपूर्णताओं पर खीझने या ग्लानि करने की आदत अच्दी नहीं। शोचनीय है श्रद्धा–विश्वास का अभाव–'insincerity'(पर नहीं, यह भी तो बदल जाती है। योग में सफलता ओर विजय के लिए आवश्यक है एकमात्र सच्चाई – 'sincerity' सच्चाई आने पर धैर्य और उत्साह भी आते ही हैं। सच्चाई आने पर रास्ते की सारी विघ्न–बाधाएं और अन्तराय–निराश, अवसाद, क्लान्ति, विद्रोह–भावना, अधीरता आदि–आदि का स्वतः उपशमन हो जाता है क्योंकि भगवती शक्ति इन बाधाओं के बीच से आत्मा को लक्ष्य की ओर प्रेरित करती रहती है। सच्चाई वह सूर्य है जिसके सामने निराशा और अवसाद के बादल तथा कुहरा ठहर नहीं सकता।

साधना–पथ पर अवसाद, अन्धकार और निराशा के दौरों की
एक परम्परा सी चली आती है।
उन्हें यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र पार करके पुनः प्रकाश में वापस आ जाना चाहिए।

मनुष्य की अन्तरात्मा उसकी नियति से अधिक महान् है।

अराधना करो और जिसकी आराधना करो, वही बनने की कोशिश करो।

शिष्यानुभव

एक ड्रायवर के अनुभव

उस महान व्यक्तितव को हमने जब 1988 में तूफानी रात में भोपाल से सागर पुरानी कार में सफर करते पाया था उस समय हम नहीं जानते थे कि कैसी भी तूफानी रात हो ओर कितनी भी जर्जर वाहन हो उसमें कुछ भी अप्रिय घटना नहीं हो सकती क्योंकि वाहन चालक के साथ एक ऐसा दिव्य व्यक्तित्व साथ था जो किसी भी अनहोनी को होनी में बदलने में सक्षम था।

इस घटना से पूज्यवर का नई कार, शिष्य परिवार की ओर से भेंट करने का संकल्प बना और इस संकल्प ने ही हमें इस महान कृपानिधान द्वारा उनके वाहन चालक के रूप में उनके साथ रहने का बहुमूल्य अवसर दिया। हमें क्या मिला था, हम उनके विछोह के बाद ही समझ सके और उस अवसर का वह लाभ नहीं ले सके जो सम्भव था। उनके साथ वाहन में चलने के जो अवसर हमें मिले थे, उनमें हमने यह महसूस किया था कि पूज्य गुरूजी के हृदय में अपने शिष्य परिवार के प्रति अगाध स्नेह और उनके जीवन के तमाम कष्टों से उबारने की अत्याधिक चाहत थी। उन 7–8 वर्षों में इस महान विभूति को अपने प्रिय शिष्यों के पास ले जाने का जो अवसर पूज्यवर ने हमें दिया था यह साधारण बात नहीं थी। पूज्य गुरूवर आज के इस युग की आपाधापी से अनभिज्ञ नहीं थे और जगह जगह जाकर अपने शिष्य परिवार को अपने पास आने का और जीवन संवारने का अवसर देना ही उनका लक्ष्य था। कहने का तात्पर्य यह है कि जो उन तक अपनी कठिनाई के कारण नहीं आ सकता उसे अपने पास आने को सुलभ और सरल बनाना था।

हमने पूज्यवर के साथ चलने में यह महसूस किया कि स्वयं परम सत्ता के अंश होते हुए गन्तव्य तक पहुंचने का संकल्प लेकर परमसत्ता को नमन करके चलने का संकेत देते थे। ऐसा नहीं है कि गन्तव्य तक पहुंचने में बाधायें नहीं आती थीं परन्तु दृढ़ इच्छाशक्ति और संकल्प तक पहुंचाने का दायित्व उनकी अनेकों जन्मों की साधना और तपस्या से अर्जित उन सिद्धियों का था और हमने पाया कि ऐसा ही होता था।

एक साधारण से वाहन चालक के रूप में हमने पूज्य सतगुरू जी के रूप में व्यवहारिकता, वात्सल्य और ममत्व की अचल, अडिग दैवीय शक्ति सम्पन्न दिव्य पुरूष का दर्शन किया है। अनेकों अवसरों पर अनहोनी को होनी होते देखा है। प्रायः हर प्रवास में गुरूजी के मुख से निकलता था कि ''आप साथ रहते हैं तो हमें कोई चिंता नहीं रहती''। यह सुनकर हमें कभी कोई गलत धारणा हमारे मन में नहीं उपजी परन्तु निश्चय ही ये शब्द गुरूजी के मुख से निकलते हैं यह संकल्प आकर उस परमसत्ता का आभार व्यक्त करने के लिये हम दिव्यता की पराकाष्ठा पर पहुंचे सतगुरूजी को लेकर सुरक्षित गन्तव्य तक पहुंचते थे। सतगुरूजी के मुख से निकले ये शब्द परमसत्ता के प्रति उनकी चरम व्यवहारिकता का भी प्रतीक था।

पूज्य गुरूजी की कृपा से हमें आज भी अच्छी तरह याद है कि प्रवास के दौरान उन्होंने

कभी कुछ भी नहीं मांगा—यहां तक कि कभी दो घूंट पानी भी उन्होंने नहीं मांगा, भले ही सफर दो घंटे या 6–7 घंटे का हो। समय होने पर हमें ही यह ध्यान रखना होता था, उन्हें समय पर भोजन करा दिया जाये या किसी उचित स्थान पर कार रोक कर दो घड़ी विश्राम करा दिया जाये। तीव्र गर्मी के मौसम में हमने कभी नहीं पाया कि गर्मी के कारण उन्हें पसीना आ रहा है अथवा किसी भी तरह की बेचैनी हो रही हो। सफर के दौरान हमने मौका पाकर उन्हें निहारने का प्रयास किया तो पाया कि एक वात्सल्य की मूर्ति अपने समस्त शिष्य परिवार के चिन्तन में डूबी कल्याण मार्ग पर ले जाने में व्यस्त है। हमने ऐसा महसूस किया कि पूज्य गुरूजी लम्बे सफर की अवधि में अन्तर जगत की दुनिया में अत्यंत व्यस्त रहते थे कि उन्हें यह जानने की कभी जिज्ञासा नहीं हुई कि हम कहां पहुंच गये अथवा गन्तव्य स्थान कितनी दूरी पर है। जिस कृपा निधान ने मां के पेट से अंतिम जन्म लिया हो और जिसे हर पल, लोक कल्याण एवं शिष्य परिवार की उलझनों को सुलझाने में लगा हो उसे यह सोच कैसे आ सकती थी कि कहां पहुंचे अथवा गन्तव्य कितनी दूरी पर है?

जनवरी 1996 में हमें गुरूजी ने मुंगेली बुलाकर यह कहा कि ''आप हमें सभी जगह लेकर सबसे मिला लाईये''। यद्यपि हमें यह सुनकर अच्छा नहीं लगा किन्तु आने वाले घटनाक्रम इस बात का संकेत था कि पूज्य गुरूजी ने ''निराश'' होकर अपना भौतिक शरीर छोड़ने का निश्चय कर लिया था। हमने यहां ''निराश'' शब्द का उपयोग इसलिये किया है क्योंकि एक बार गुरूजी ने कहा था कि– ''गुरूजी हमारे हैं—यह सब बोलते हैं किन्तु एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो कहे कि हम गुरूजी के हैं, माने आकर रहो पास में—सब छोड़ो। है हिम्मत?तो तात्पर्य है कि मेरा तो कोई नहीं।''

1996 का यह प्रवास अधिक महत्वपूर्ण इस कारण भी था कि पूज्य गुरूजी का स्वास्थ्य सफर योग्य नहीं था और उनका यह कथन कि सबसे एक बार मिला लाईये हमें व्याकुल और बेचैन करता था पर हम अथवा उन तमाम स्थानों पर जहां गुरूजी को लेकर गये थे हम में से कोई भी यह समझने में समर्थ नहीं था कि पूज्यवर ने भौतिक शरीर छोड़ने का संकल्प कर लिया था।

मुंगेली से निकलकर रायपुर गए। डॉ. जलगांवकर ने नागपुर में गुरूजी को पूरी तरह चेकअप भी कराया था क्योंकि उनकी काया सफर योग्य नहीं थी। परन्तु डॉ. जलगांवकर ने हमें यह कह कर आगे जाने की हिम्मत दी थी कि पूज्य गुरूजी दृढ़ निश्चय के साथ निकले हैं—मानेंगे नहीं अतः आप उस दया की मूर्ति को लेकर आगे जाईये। इस अवस्था में भी गुरूजी को अपनी प्रिय शिष्या डॉ0 अर्चना आचार्य रायपुर के स्वास्थ्य की चिन्ता थी। वे अपने स्वास्थ्य परीक्षण के लिये बम्बई जा रही थीं, जिन्हें पूज्यवर ने यह कहकर आशीष दिया था कि आपका कुछ नहीं होगा और ऐसा ही हुआ था। पूज्यगुरूजी को हम वीतरागी, त्रिकालदर्शी और अरिहंत मानते हैं क्योंकि उनके मुख से निकला हर वचन परमसत्ता का ही वचन साबित हुआ है।

नागपुर से हम गुरूजी को लेकर वर्धा आये जहां गुरूजी के मुख से खून की उल्टी हुई थी। पर उस हालत में भी उन्हें चिन्ता अपने शिष्य परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण की

रही। हमें डा. अर्चना आचार्य के स्वास्थ्य परीक्षण की जानकारी बम्बई से लेने का आदेश दिया और उनके परीक्षण की सामान्य रिपोर्ट सुनते ही पूज्य गुरुजी बोले ''ऐसा हो ही नहीं सकता कि अर्चना की रिपोर्ट समान्य ना हो''। हम कुछ समझ नहीं सके तभी हमें पता चला की बम्बई से फोन आया था जो परिवार मे किसी बच्ची ने सुना था और गुरुजी को बताया कि डा. अर्चना का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। यही कारण था कि पूज्य गुरुजी ने हमें बम्बई से सही जानकारी लेने का कहा था। रायपुर से चलते समय गुरूजी ने डा. अर्चना को आशीष दिया था और उन्हें विश्वास था कि उनका दिया आशीष फलदायी ही होगा।

पूज्य गुरूजी के चालक के रूप में हमने घटनाओं के आधार पर यह अनुभव किया था कि पूज्यवर एक विलक्षण व्यक्तित्व के धनी हैं, जिन्हें भूत, भविष्य, वर्तमान स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। इसी कारण वे त्रिकालदर्शी, वीतरागी, अरिहंत अवस्था के धारक करूणासागर और करूणानिधान दया की साक्षात मूर्ति के रूप में पूज्यनीय एवं बंदनीय हैं। दिव्याम्बु निमज्जन भाग–2 में ऐसी अनेक घटनाओं को विस्तार से लिखा गया जिससे यह सभी बातें स्वयं सिद्ध हैं। पूज्य गुरूजी इच्छाशक्ति के धनी रहे हैं और भोपाल में अंतिम गुरू पूजा का उनका दृढ़ संकल्प पूरा करने के लिये अपनी अत्यधिक गंभीर अस्वस्थता की दिशा भी बदलना उन्हें सम्भव था।

पूज्य गुरूजी भौतिक शरीर त्यागने का निर्णय 1996 को ले चुके थे और उनकी अंतिम यात्रा भोपाल के जन्मोत्सव कार्यक्रम के बाद मुंगेली के लिये हुई थी। उस समय की घटनायें अत्यंत पीड़ाजनक और व्यथा भरी है जिन्हें हम लिखने में असमर्थ हैं। परन्तु मुंगेली से निकलते समय हमें गुरूजी ने जो अंतिम शब्द कहे थे–''इस बार हमारी खोज खबर जल्दी जल्दी लेना'', यह भी उनका अंतिम संकेत था कि वे अपने संकल्प पर दृढ हैं और मात्र 6 महीने बाद उन्होंने अपने भौतिक शरीर से विदा ले ली। एक साधारण से वाहन चालक के रूप में हमें और हमारे पुत्र राजेश को भी जो अवसर मिला उसके लिये हम लोग नतमस्तक होकर उनके चरणों में वन्दन और शीष नमन करते हुए उनके अविरल आशीष की प्रार्थना करते हैं।

जीवन कुमार जैन, भोपाल

हाँ, मैं वस्तुओं में भी हूँ इसलिए उनके साथ
सावधानी से व्यवहार करना चाहिए।

अनुभूति तार्किक मन से बहुत आगे तक जाती है।
स्पष्ट है कि तार्किक मन को भगवान् तक
पहुँचना कठिन लगता है, लेकिन सरल हृदय
उनसे लगभग बिना किसी प्रयास के
नाता जोड़ सकता है।

गुरुजी कृपा के सागर हैं

4 जुलाई 1975 को हमारी तीनों लडकियां तथा उनके घर के लोग नागपुर अमरावती मार्ग स्थित एक स्थान में पिकनीक मानाने जा रहे थे। सब हंसी मजाक चल रहा था। गाड़ी ने नागपुर पार किया। थोड़ी दूरी पर डिवाइडर को क्रास करके कुछ गाय रास्ते पर आ गयी। ड्रायवर ने गाड़ी थोड़ी साईड में ले ली और उसका ब्रेक न लगने से हमारी गाड़ी सामने खड़े ट्रक से जा लड़ी। ये भिड़न्त इतनी जोर की थी कि आजू–बाजू के लोगों को ऐसा लगा कि अंदर के लोग जख्मी हुए या मर गये। लेकिन गुरू कृपा से सब बच गये। ड्रायवर के पास मेरा पोता बैठा था, उन दोनों को कुछ नहीं हुआ। खरोंच तक नहीं आयी। बीचवाले सीट पर मेरी लड़की, मेरी समधन मेरे साथ थे। मेरी लड़की का कंधा दुखने लगा। मेरे दोनों हाथ फ्रैक्चर हो गये। मेरे समधन के कंधे का बोन डिसलोकेट हो गया। पीछे वाली सीट पर मेरे पति (प्रभुजी) और दो पोते बैठे थे। उनको भी खंरोच तक नहीं आयी। हम दोनों को छोड़कर बाकी किसी को कुछ भी नहीं हुआ। मुझे और मेरे समधन को नागपुर के एक प्रायवेट हॉस्पिटल में ले जाकर प्लास्टर किया, सलाईन चढ़ाया और एक घंटे बाद हम सब सेवाग्राम हॉस्पिटल गये। वहां हमारे जंवाई डीन आफिस में काम करते है तथा समधन भी वहा कर्मचारी थी। इसलिए ऑर्थोपेडिक डिपार्टमेंट डॉक्टर तुरंत आ गये। फिर एक्स–रे, प्लास्टर, फिर एक्स–रे होने के बाद तीन दिन के बाद मेरा दोनो हाथों का ऑपरेशन हुआ। मेरे समधन का भी आपरेशन हुआ।

ताज्जुब की बात तो यह है कि हम दोनों को छोड़कर गाड़ी में बैठे किसी को भी कुछ नहीं हुआ। खरोंच तक नहीं आई। हमारा हाथ फ्रैक्चर हो गया लेकिन शरीर पूर्ण स्वस्थ रहा।

यह प.पू.गुरूजी की हम पर कृपा है, ये दर्शाता है। एक्सीडेंट के बाद या आपरेशन के बाद कुछ भी तकलीफ नहीं हुयी। आज में पूर्णरूपेण तन्दरूस्त हूँ। क्या यह प.पू.गुरूजी की कृपा प्रसाद नहीं कहलायेंगे? क्योंकि आखिरी गुरू पूजा समाप्त होने के बाद जब पू.गुरूजी मुंगेली के लिये प्रस्थान कर रहे थे तब घर के बाहर जाने से पहिले उन्होंने कहा 'शीला, मैं यही हूँ। और इसका प्रत्यक्ष अनुभव हमें बार बार आता है। हमारे गुरूजी हमारे पास हैं यह विश्वास है। वो ही करता करवाता है। सब उन्हीं के इच्छानुसार होता है फिर क्यों फिक्र करना? उनकी कृपा छाया में हम सुरक्षित हैं।

सौ. शीला पांडे श्री निवास कालोनी, वर्धा

मुझे गुस्सा आ रहा है, क्योंकि मैं अपनी 'आत्मा' को नहीं पा सकता। जैसे ही मैं उसे तलाश करना शुरू करता हूं, मुझे इस शरीर के सिवा कुछ नहीं दिखायी देता जो तुच्छ विचारों और उपद्रवी कामनाओं की मांद जैसा है।

भगवान मुझसे क्या चाहते हैं? वे चाहते हैं कि पहले तुम अपने–आपको पा लो, कि तुम अपनी सच्ची सत्ता, अपनी चैत्य सत्ता के द्वारा निम्नतर सत्ता पर अधिकार कर लो,उस पर शासन करो

गुरूजी की कृपा

22 जुलाई 2000 को गुरूपर्व मनाने के लिए मैं और मेरा पूरा परिवार तथा श्री प्रभाकर पांडे जी तथा श्रीमती शीला ताई पांडे जी टाटासुमो करके वर्धा से मुंगेली के लिए सुबह 7.00 बजे रवाना हुए । पंद्रह कि.मी. दूर परसेलू नाम का छोटा गांव है, वहा ड्रायवर ने डीज़ल भरने हेतु गाड़ी पेट्रोलपंप लाकर खड़ी किया। गाड़ी खड़ी करते समय ड्रायवर को हल्के से कुछ टूटने की आवाज़ सुनाई दी। डीज़ल भरने के बाद चालक ने स्टेयरिंग को घुमाने की कोशिश की लेकिन स्टेयरिंग नहीं घूमा। सभी ने मिलकर गाड़ी को बाजू में खड़ा किया और देखने के बाद चालक के पहले ही पेट्रोल मालिक ने कहा गाड़ी का स्टेयरिंग रॉड टूट गया है। उसने पूछा आप लोग कहाँ जा रहे हैं?हम लोगों ने कहा रायपुर होते हुए मुंगेली जा रहे हैं। फिर से उन्होंने कहा, मेरे पूछने का यह आश्य है कि आप किस लिए जा रहे हो?हम लोगों को भी थोड़ा सा अजीब लगा कि इसको क्या करना है, हम कहीं पर भी जाएं। हमारे सबके चेहरों के भाव जानकर पेट्रोलपंप का मालिक बोलने लगा आप सभी निश्चित रूप से कहीं पवित्र स्थान पर जा रहे होंगे। हमने कहां, हाँ। हम सभी हमारे पू. गुरूदेव के समाधि के दर्शन एवं गुरूपर्व के कार्यक्रम के लिए जा रहे हैं। उस पर वह बोला इसलिए आप लोग बच गये, नहीं तो यह स्टेयरिंग रॉड पाँच मिनिट पहले टूटता तो गाड़ी में के आंधे लोग स्वर्ग सिधार गये होते।

उसकी यह बात सुनकर हमारे होश उड़ गये और उस समय हमें पता चला कि गाड़ी में बहुत बड़ी बिगाड़ हो चुकी है। गाड़ी सुधारने के लिए वर्धा से मैकनिक आया। करीब दो घंटे गाड़ी को सुधारने में लगे। बाद में हम सभी ने मुंगेली की यात्रा का पू. गुरूजी के स्मरण से आरंभ किया। ''गुरूकृपा एवं केवलं'' गुरूजी की असीम कृपा से ही यह संकट टल गया था। इस पर हमारा दृढ़ विश्वास है।

प.पू.श्री गुरूजी ने कहा था कि में 500 साल हूँ, इसका अनुभव गुरू परिवार के सभी सदस्य हर पल लेते हैं।

राजू काण्णव, वर्धा

तुम सम्पूर्ण त्याग की बात कर रहे हो, लेकिन शरीर को छोड़ना सम्पूर्ण त्याग नहीं है। सच्चा और पूर्ण त्याग है अहं का त्याग जो कहीं अधिक दुःसाध्य प्रयास है। अगर तुमने अपने अहं को न त्यागा हो तो शरीर छोड़ देने से तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी।

गुरूजी का गरिमापूर्ण व्यक्तित्व

यह लेख हमारे आदरणीय वरिष्ठ गुरूवंधु श्री डी0एस0 राय की प्रेरणा एवं सुझाव अनुसार प्रस्तुत है, जिसमें परम पूज्य श्री गुरूजी के व्यक्तित्व के गरिमा की– उनके ग्रेस Grace को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। हम सबके परम श्रद्वेय, परम पूज्य श्री गुरूजी को अपने भौतिक शरीर छोडे कई वर्ष बीत चुके है। इस बीच हमारे कई आदरणीय एवं श्रद्वेय गुरू भाईयों एवं बहनों ने भी कालधर्म अनुसार स्वर्गारोहण कर लिया है। ये लोग परम पूज्य गुरूजी के बहुत समीप थे एवं बहुत वर्षो तक उन्हे श्री गुरूजी का सानिध्य मिला था। जैसे श्रद्वेय डॉ0 व्ही. ए. शिन्दे साहब, श्रद्वेय रघुनाथ पाण्डेय साहब एवं उनकी पत्नी, श्री तकवाले जी जैसे कई शिष्य परिवार के आदरणीय जन। अतः इसके पहले कि बहुत देर हो जाये, परम पूज्य गुरूजी के व्यक्तित्व के भौतिक पक्ष का कुछ चित्रण इसलिए आवश्यक है कि श्री गुरूजी के जीवन काल में उनसे जो प्रत्यक्षतः नहीं मिल पाये अथवा जो बहुत छोटी उम्र के रहे होंगे अथवा जो नई पीढी के गुरू भाई बहन हैं – उनकी जिज्ञासा रहती है कि जैसे कि हम सबको भी यह जिज्ञासा रहती है कि श्रीराम, श्रीकृष्ण, ईसा, बुद्व, महावीर प्रभृति महापुरूषो के संबंध में कि वे कैसे दिखते थे, रहते थे, ये महापुरूष चाहे पौंराणिक पात्र हो या ऐतिहासिक हो , सुदूर प्राचीन के हो या निकट भूतकाल के हो – जैसे तुलसी, सूर, मीरा, नानक, तुकाराम आदिशंकराचार्य जी, – ऐसी जिज्ञासाओ की किंचित पूर्ति यथासंभव हो सकें , इसलिए हम लोग कुछ चर्चा करेगें। हमारे गुरूदेव, जिनके जैसा महापुरूष करोडों अरबों में कोई एकाध होता है , वह भी सदियों के बाद , तो वे कैसे थे यह जानने की चाह हम सबको भी परस्पर बनी रहती है। उन्हें भी जिन्होनें बरसों उनके समीप रहने का उच्चतम लाभ प्राप्त किया है – वे सब भी श्री गुरूजी के संबंध में जानने के लिये शिशुवत जिज्ञासु रहते हैं। फिर भी चाहे जितना भी बताया जाये या लिखा जाये यथार्थतः वह कभी पूर्ण नही हो सकता है। समस्त वर्णन असंभव है। उनका आध्यात्मिक पक्ष अगाध और असीम तो है ही, उनका भौतिक पक्ष भी हमारी लेखनी की सामर्थ्य से परे है । कहा भी गया है – (संभवतः कबीर ने कहा है)

सात संमुन्दर मसि करूँ , लेखनि सब वनराय,
धरती सब कागद करूँ, गुरू गुण लिखा न जाये,

फिर भी अत्यंत संक्षेप में ही सही , उनके भौतिक स्वरूप का कुछ चित्रण का प्रयास किया जा रहा है। प्रस्तुत लेख के केन्द्र में श्री गुरूजी की ग्रेस Grace है, उनके व्यक्तित्व की गरिमा है जो उनकी विभिन्न मुद्राओं में, हावभाव, अंग परिचालन में, उठना बैठना, चलना, भोजन, स्नान कपडे पहनना, वार्ता करना, प्रवचन एवं आर्शीवचन जैसे क्रियाओं के तटस्थ अवलोकन पर आधारित है। उनकी ग्रेस Grace चित्त में अंकित सी हो जाती थी। फिर वह कोई भी हो – परिचित या अपरिचित। वे सहज ही ग्रेसफुल है बिना किसी आडम्बर या दिखावे के । 'ग्रेसफुल' अंग्रेजी शब्द है जिसके मुख्यतः दो अर्थ समझ में आते हैं – हिन्दी में 'शिष्ट शालीन सुन्दर एवं गरिमापूर्ण' तथा दूसरा अर्थ है 'जो सबके लिये दिव्य कृपा से पूर्ण है' । बिना अपने पराये का भेद

किये सबके लिये ईश्वरीय करूणा एवं कृपा से युक्त हैं। हमारे परम पूज्य श्री गुरूजी के संदर्भ में ये दोनो ही अर्थ शत–प्रतिशत लागू होते हैं । उनके व्यक्तित्व का हर पहलू ग्रेसफुल था, गरिमामय था जो सहज ही चित्त को खींच लेता था। आकर्षक व मनोहर तथा गरिमापूर्ण एवं कृपा एवं करूणा से छलकता हुआ, आंतरिक दिव्यता से संपन्न, उनका मुखमंडल सहज स्वाभाविक रूप से ही तेजोमय दमकता था । कहीं कोई विषाद की क्षीण रेखा या क्लान्ति नहीं । कोई चिन्ता या अवसाद का तो प्रश्न ही नहीं। एक अदभुत आनंद में अविचल आसीन। सबने ऐसा ही उन्हें देखा है। और वही आनंद वे सबको बांटते थे। उनके भव्य ललाट पर कोई तिलक चंदन आदि का आडम्बर नहीं रहता था। उनके मस्तक पर सुव्यवस्थित केशों की शुभ्रता मानो उनके अंतःकरण की निर्मलता और उज्जवलता को प्रकाशित करती थी। उनके नेत्रों में सदैव 'भाव' रहता था, कभी भी किसी काल में 'अभाव' का लेशमात्र भी नही। सुन्दर सरस नेत्रों में सबको बंधनमुक्ति और निर्भयता का आश्वासन अविराम प्रवाहित होता रहता था । गुरूजी सीधे खडे होते थे। उनकी देहयष्टि में कही कोई वक्रता या अनावश्यक शिथिलता नहीं थी। इसी तरह सीधे सधे हुए कदमो से युक्त, उनका उठना, बैठना व चलना होता था। ये है तो बहुत छोटी छोटी बातें परन्तु श्री गुरूजी के परिचय में कुछ प्रकाश डालती है। परम पूज्य श्री गुरूजी की बैठने की मुद्रा बहुत आकर्षक थी। कही कोई शारीरिक अक्षमता दुर्बलता या दयनीयता का लेशमात्र भी स्पर्श नहीं रहता था । रीढ उन्नत एवं मस्तक व ग्रीवा के साथ एक सीधी रेखा में होकर वे बैठते थे । ऐसी विशिष्ट उपस्थिति का प्रत्यक्ष दर्शन उनके सौम्य स्वरूप में होता था। उनकी उपरोक्त शारीरिक मुद्रा में कोई अकड या गर्व का नहीं वरन दिव्य विनम्रता का प्रभामंडल बना रहता था। वे सजग, पूर्णतः सजग एवं सावधान अवस्था में ही बैठते थे। श्री जे.के. जैन साहब ने एक बार बताया था कि भोपाल में उनके निवास पर कार्डलेस फोन का उपयोग करते समय गुरूजी के हाथ से कहीं छूट न जाये ऐसी शंका जैन साहब के द्वारा व्यक्त करने पर गुरूजी ने उन्हे कहा कि उनके हाथ से पकडी हुई कोई वस्तु छूटकर गिर जाये ऐसा होना असंभव हैं। श्री जैन साहब आश्चर्य चकित रह गये। उस समय श्री गुरूजी की उम्र 88 वर्ष से अधिक ही थी। वे अस्वस्थ थे, अतः किंचित वजनी हैंडसेट के हाथो से छूटकर गिर जाने की शंका श्री जैन साहब को हुई होगी। इसपर श्री गुरूजी के व्दारा यह कहना कि उनके हाथ से कोई चीज उनकी इच्छा के बिना गिर ही नहीं सकती से क्या यह अर्थ नही निकलता कि **उनके शरणागत जो हो गये हैं, जिन्हे श्री गुरूजी ने संभाल लिया है, उनका गिर पाना असंभव है। अर्थात् ऐसे शिष्यों का अधःपतन कदापि नहीं हो सकता। वे सब जो शरणागतजन है गुरूजी के हाथो में पूर्णतः सुरक्षित है।** मेरी दृष्टि में उनके कथन का यही वास्तविक तात्पर्य होता है। 18 वर्षो के दौरान मैंने स्वयं भी यह देखा था कि श्रीगुरूजी का उनकी **दसों इद्रिंयो पर संपूर्ण नियंत्रण था । वे कहते भी थे कि – इन आंखो पर, हाथो पर, जुबान पर, ऑखो की पुतलियो पर, यहॉ तक कि मन पर भी मेरा कंट्रोल है।** खाते पीते हुए कोई पेय जैसे चाय या जूस या

पानी लेते समय यहॉ तक की औषधी लेते समय भी या भोजन करते समय, जूठन का कोई कण या कोई बूंद कही नही गिर सकती थी। ऐसी सावधानी उनकी प्रत्येक क्रियाओं में स्थापित हो गई थी। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य – व्यवहार में मर्यादा का अखंड ध्यान रखते थे। वे शब्दो में, बोलो में, दृष्टि में भी प्रचलित मर्यादाओ का सैदव विशेष ध्यान रखते थे ।

श्री राजू काण्णव ने बताया था कि ट्रेन में यात्रा के समय भी वे निरन्तर ध्यान रखते थे कि अन्य यात्रियो को किसी प्रकार की असुविधा उनके कारण न हो। और यहॉ तक कि पानी पीते समय किसी अन्य पर छलक न जाये इस हद तक ख्याल रखते थे। याद आता है कि लगभग 1991 के आसपास से वे अपने गले पर भोजन आदि लेते समय नेपकिन बांध लेते थे। ताकि आसपास वस्त्रो या बिस्तर पर कोई कण गिर न जाये।

उनके प्रत्येक कार्यो, क्रियाओं एवं व्यवहार में एक ग्रेसफुलनेस (Gracefulness) व्याप्त रहती थी। उनको देखना एक अनुभव होता था। फिर चाहे वे मौन ही क्यो न बैठे हो। भगवान श्रीकृष्ण के क्रियाओं के सौंदर्य के संबंध में प्रसिद्व'मधुराष्टक' छंद सुनने को मिलता है। जिसमें उनकी हंसने, बौलने, चलने, देखने आदि के माधुर्य पूर्ण सौंदय का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार की मुधरता एवं आकर्षण श्री गुरूजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में झलकती थी – वह सच्चे अर्थो में 'वासुदेव' है – अपने नाम के अनुरूप वासुदेव (अर्थात् श्रीकृष्ण)।

प्रश्न उठता है कि सामान्य मानवीय क्रियाओ एवं व्यवहार में उपरोक्त मधुरता, गरिमा एवं आकर्षण उनमें क्यों दिखाई पडता था। मेरी समझ मे इसका कारण यह है कि उनके भीतर व्याप्त दिव्यता स्वयं इस रूप में व्यक्त होती रहती थी। और उनके उक्त दिव्य स्पर्श से मानो हर वस्तु एवं कार्य आलोंकित हो उठता था।

स्नान के बाद जब गुरूजी धोती बांधते थे तो चुन्नट की हुई धोती को एक हाथ से पकडकर दूसरे हाथ से एक सिरा खिंचकर बहुत सलीके से बांध लेते थे । राजू काण्णव जी ने बताया कि वे स्पर्श मात्र से बता देते थे कि कैसी क्वालिटी के डिटरजेंट से कपडा धौया गया है। ऐसी संवेदनशीलता गुरूजी की उॅगलियो में थी।

जैसा कि हम सभी को विदित है कि हमारे गुरूदेव ने परम सत्य के साक्षात्कार के लिये मानव देह में जन्म लिया था । वे उस सत्य की खोंज में आजीवन लगे रहे । अंतिम सत्य – परम सत्य क्या है ?यही जिज्ञासा उन्हे हजारो मील दूर दक्षिण अमेरिका से भारत खींच लाई थी । वे कई बार कहते भी थे कि मै सत्य की खोंज में हूॅ, आखिरी सांस तक सत्य की खोंज में रहूॅगा । मेरा जीवन सत्य के लिये ही समर्पित है। इस सत्यान्वेषण के दौरान भी वे आंडम्बर से बहुत दूर रहते थे। उस परम सत्य की चरम उपलब्धि के पश्चात् भी जब वे खुले हाथो यह दौलत लुटाने को, मार्गदर्शन करने को गृहस्थो के घरो पर ठहरते, निरन्तर यात्राये करते रहते, तब भी गुरूजी आडम्बर से कोसो दूर रहते थे । वे अपने सिर पर केश न तो ज्यादा लम्बे और नही ज्यादा छोटे रखते थे। बिलकुल सामान्य रखते थे ।

वे हर प्रकार से सदा सुव्यवस्थित रहते थे। स्वभावतः सुव्यवस्थित। सहज सरल। वर्ष 1987 की शीत ऋतु में ग्वालियर में श्रद्धेय डॉ. साहब शिन्दे (अब स्वर्गीय) के निवास पर देखा कि गुरूजी ने बगैर आईने के ही अपने हाथो से शेविंग कर लिये तथा छोटी सी कंघी से अपने बाल संवार लिये। हम तीनो नीचे बैठे देख रहे थे । तब आदरणीया सईदा दीदी ने डॉ. साहब से कहा था कि ''देखिये डॉक्टर साहब बिना आईना के ही गुरूजी ने कैसे शेविंग कर ली।'' शेविंग भी गुरूजी रोज तो नही पर एक–दो दिन के अंतराल पर करते ही थे। दाढी नही बढने देते थे ।

जब भोजन के लिये गुरूजी बैठा करतें थे तो थाली लगने पर एक –एक व्यंजन (चाहे छोटा हो या बडा) छूकर पूंछते कि क्या बना है । कभी कभी पूछते इसे कैसे बनाये हो। भोजन हमेशा बडे ही चाव से लेते थे । और यद्यपि बहुत अल्प मात्रा में भोजन करते थे परन्तु बनाने या परोसने वाला कभी निराश नही होता था। प्रशंसा के साथ ढेरो आशीष और इनाम पाकर उपस्थित सभी जन धन्य हो जाते थे। विशेष रूप से रसोई बनाने एवं परोसने वाली गृहणी । इस संबंध में कई गुरू भाईयों एवं बहनो ने पहले भी लिखा है। आदरणीय कुसुम दीदी का पिछले उदबोधन में बहुत सुंदर, बहुत हृदय ग्राही लेख प्रकाशित हुआ था।

उनके उपयोग की प्रत्येक वस्तु सुव्यवस्थित, जहॉ पर जैसे होनी चाहिए वैसी ही स्थिति में उनके द्वारा रखी जाती थी । गुरूजी के हाथो और उॅगलियों के संवेदनशीलता की पराकाष्ठा थी कि वस्तुओं को स्पर्श मात्र से उनकी वास्तविक स्थिति उन्हे पता चल जाती थी । आशीष के साथ शिष्यों को वे रूपये भी प्रदान करते थे । जिसे छूकर उन्हें पता रहता था कि ये नोट कौन सा है । 10–20, 5, 1, 100, या 500 का है। तकिये के पास एक तरफ तह की हुई नैपकीन तो दूसरी तरफ दवाईयॉ । होमियोपैथिक शीशीयॉ, पाउच जिसमें कई परते थी और किस पाउच में किस पाकेट में कौन सी वस्तु है वे छूकर जानते थे । और प्रयोग के बाद उसी पाकेट में वस्तु रखी जाती थी । (यहॉ ध्यान देने योग्य है कि गुरूजी की नजर धीरे धीरे यद्यपि समाप्त हो चुकी थी) जो चीज जहॉ से उठाये वही पर रखते थे। एक तरह से **अनुशासन** का विस्तार विविध वस्तुओ के रखरखाव में, प्रयोग में, प्रत्यक्ष प्रमाणित होता था । वस्तुओं के प्रयोग में स्वानुशासन की स्थिति थी कि पानी भी आवश्यकतानुार ही ग्लास मे लेते थे। स्नान के दौरान भी चाहे जितनी मात्रा में गुनगुना / गर्म पानी रखा हो । परन्तु उपयोग आवश्यकतानुसार ही करते थे। **अपने स्वयं के आचरण से ही वे उपदेश एवं मार्गदर्शन** का कार्य बिना मुॅह से बोले ही देते रहते थे। आवश्यकता से अधिक वस्तु कभी नही रखते थे। अर्थात् वे **संग्रह नही** करते थे। शिष्यो के व्दारा भेंट करने के कारण कई बार कई चीजें जमा हो जाती थी जिन्हें श्री गुरूजी अपने कृपा एवं विशेष स्नेहपूर्ण आर्शीवचनो के साथ बांटते रहते थे।

एक तपस्वी की डाँट भी लाभदायक होती है क्योंकि यह ऐसे व्यक्ति हैं जो यह कहते हैं, 'हे प्रभु, मुझे न तो भोजन चाहिए, न निद्रा, न ही शरीर और न ही बुद्धि, यहाँ तक कि आप भी नहीं'।

ओ.पी. शर्मा, इंदौर

अखण्ड ब्रह्मांड में श्री सत्‌गुरुजी के दर्शन

परम पूज्य श्री सद्‌गुरुजी के चरण कमलों में सादर नमन, दृष्टांत जुलाई 1997 का है। परम पूज्य श्री गुरुजी को 23 जुलाई के भोपाल जन्मोत्सव के कार्यक्रम हेतु लाने के लिए आदरर्णीय जे.के. जैन सा., राजू भैया एवं मैं मुंगेली गये थे। चूकि गुरुजी का स्वास्थ्य उन दिनों काफी खराब चल रहा था, प्रारंभ में तो श्री गुरुजी ने भोपाल चलने हेतु मना कर दिया था, किन्तु डॉ. अग्रवाल सा. की सहमति पश्चात श्री गुरुजी चलने हेतु राजी हो गये। एक नियत तारीख पर हम सभी लोग मुंगेली से भोपाल हेतु रवाना हो गये। एम्बेसेडर में पीछे की सीट पर गद्‌दे एवं तकिये बिछाकर श्री गुरुजी को लिटाकर हम रवाना हुये। कार ड्राईव श्री राजू जैन कर रहे थे एवं उनके बगल वाली सीट पर मैं एवं वर्धा वाले भाई सा. श्री धर्माधिकारी जी बैठे थे। श्री गुरुजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था, बार–बार दस्त भी लग रहे थे। कमजोर भी काफी हो गये थे। उसी अवस्था में हम सभी लोग आनंदपूर्वक भोपाल हेतु चले जा रहे थे।

भोपाल एवं जबलपुर के बीच चलते–चलते अचानक ही मेरे तुच्छ मन में एक कुविचार आया वो ये कि हम सभी लोग श्री गुरुजी को ब्रम्ह स्वरूप ईश्वर का रूप मानते है फिर श्री गुरुजी को इतने कष्ट क्यों, शारीरिक वेदना इतनी क्यों? ये क्या एवं क्यों ऐसा हो रहा...सब समझ से परे है। इस विचार आने के पश्चात ..अचानक ही मुझे बहुत तेज ठंड लगकर बुखार आ गया एवं मैं कपकंपाने लगा। ठीक उसी समय श्री गुरुजी अचानक बोले कि ये एक तकिया ज्यादा है, इसे आगे ले लो। मैंने शीघ्र ही वो तकिया अपने ह्रदय से लगाया एवं कसकर पकड़ा, तकिया सीने से लगाते ही मेरा बुखार एवं कंपकपी एकदम शांत हो गयी। फिर मैंने देखा कि श्री गुरुजी पीछे की सीट पर एकदम सीधे (स्वामी विवेकानंद की तरह) शांत, मुस्कुराते हुये बैठे हैं। इसके बाद मेरी आँखों के सामने जो दृश्य मैंने देखा वो अकल्पनीय था। खुली आँखों के सामने पूरा ब्रह्मांड दिख रहा था जिसमे हर जगह श्री गुरुजी ही श्री गुरुजी दिख रहे थे। इसके बाद मेरे बचपन की छोटी मोटी घटनाओं (जो मुझे याद थी), वहाँ से लेकर मेरा पूरा जीवनकाल का सफर व मेरी शादी एवं जिस गाड़ी में विदाई हुई, वो तक एक चलचित्र की तरह मुझे सब कुछ दिखाई दिया। परम पूज्य श्री गुरुजी को उठाने बैठाने इत्यादि में सम्पर्क आने पश्चात् शरीर इतना Charge हो गया कि भोपाल आते आते दिमाग डिलिरियम की स्थिति में पंहुच गया एवं मैं कुछ अर्नगल बातें भी करने लगा। भोपाल पहुँचकर तत्काल मुझे अस्पताल में भर्ती किया गया। सुबह उठकर बड़े भाई सा. श्री हरपाल सिंहजी परम आदरणीय श्री गुरुजी से मिलने गये एवं मेरे स्वास्थ्य के बारे में सब कुछ बताया। श्री गुरुजी मन्द मन्द मुस्कुराते हुए बोले, चिन्ता न करो, एकाध दिन में सब कुछ ठीक हो जाएगा। दूसरे दिन मैं एकदम सामान्य हो गया.. फिर डिस्चार्ज करा के घर आये और फिर श्री गुरुजी के चरणों में सादर प्रणाम करने फिर पहुंचे। उपरोक्त वृतांत श्री गुरुजी की असीम कृपा का ही प्रतिफल है कि उन्होंने इन खुली आँखों से पूरे ब्रह्मांड की सैर करा दी। ''जय हो गुरुजी की जय'' । पुनः प.पू. श्री गुरुजी के चरणों में पूरे परिवार का सादर नमन। त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी।

चरणानुरागी **डॉ. अरविन्द चौहान, भोपाल**

मन की बातें

एक मुमुक्षु

गुरुजी मन की बाते जान लेते थे, कुछ ऐसी घटनायें गुरुभाई, बहनों के साथ साझा कर रहा हूं, जो मेरे साथ हुई हैः—1. सनावद में 83, 84 के आसपास, मैं रबड़ी एवं खौलते हुए दूध जो उस समय मिलता था, को गुरुजी को समर्पित कर हमेशा गुरुजी ग्रहण कर रहे है, इस भाव से पीता था, खाता था। वापस आने पर गुरुजी बोले की, तुम सनावद में खूब दूध पिये हो और रबड़ी खाये हो। 2. दुर्ग के निवास में 1993 के आसपास गुरुजी के चरण पादुका को पकड़कर प्रार्थना किया, की धर्मपत्नी मेरे मनोनुकूल रहे। दूसरे दिन मुंगेली पहुँचने पर प्रणाम करते ही बोल दिए, कि धर्मपत्नी मनोनुकूल रहेगी। 3. गुरुजी को एक बार मन ही मन बोला कि मुझे अपने जैसा बना लीजिये, गुरुजी तुरन्त बोले हमारे जैसे कोई न बने उसका छप्पर उड़ जायेगा। 4. डॉ. साहब के यहाँ रायपुर में गुरुप्रसाद पाण्डे भैया एवं दो गुरुभाई बैठे थे, मेरे द्वारा प्रणाम करने पर गुरुजी बोले की ये भी मस्तराम है, मैं मन ही मन बोला कहाँ गुरुप्रसाद पांडे भैया कहाँ मैं, ये कैसे हो सकता है, गुरुजी तुरन्त बोले, हमने एक बार कह दिया सो कह दिया, कोई माने या ना माने। 5. तेजवानी भैया के यहाँ रायपुर में एक बार ही गए थे, संयोग से मैं भी वहाँ पहुँच गया, थोड़ी देर बाद गुरुजी बोले क्या बात है, आज प्रकाश कुछ बात नहीं कर रहा है, मैं मन में सोचा कि मैं कोई खास बात तो करता नही हूँ गुरुजी ऐसा क्यूँ बोल रहे हैं? फिर याद आय गुरुजी के पास जाने पर मन ही मन हमेशा सभी धर्मो के अवतारी पुरूष एवं सन्तों को उनके चारो तरफ बिठाकर उन सबसे गुरुजी को तेल लगाओ, मालिश करो, भोजन खिलाइये, 24 घण्टे सेवा करते रहिये, हाथ पैर दबाइये, बातचीत करते रहिये, उनको कोई तकलीफ न हो इसका ध्यान रखिये, और वो सब वैसा कर रहे हैं, महसूस करता करता था, जो उस दिन मानसिक रूप से कर नही पाया था। 6. रायपुर में डॉ. साहब के निवास पर 1995—96 में मन ही मन गुरुजी से प्रार्थना किया था, की गुरुजी आप 15 दिन या 1 माह के भीतर दर्शन देते रहिये, यकीन मानिये इस प्रार्थना को गुरुजी के चरणों में रु. 5000/— दे देना है। एक गुरुभाई के साथ जाने पर गुरुजी पूछे कौन कौन आये हो? वो दो तीन बार अपने और अपने लड़के के बारे में जो साथ में आये थे, बताते थे, फिर गुरुजी पूछे प्रकाश आया है क्या? वो बोले हां आया है, गुरुजी बोले वही तो पूछ रहा था। लगभग 10 मिनट बाद रु.5000/— देने पर गुरुजी बोले अच्छा भई चुपके, चुपके, फिर अशोक, ये प्रकाश है, करके उनको दे दिए, अशोक भैया बताये शायद लगभग रु.2500/— का बिजली या कोई बिल आया था, और पैसे कम थे। रोम रोम में बसने वाले गुरुजी को हम सबका सतत् प्रणाम होता रहे, यही उनसे प्रार्थना है।

गुरुजी की आशीष

1995 में मुझे ulcerative colitis यह बीमारी हुयी थी। मैं डॉ. जलगांवकर जो मेरे बहनोई हैं, उनके साथ प.पू.श्री गुरूजी के दर्शन करने हेतु रायपुर में डॉ.आचार्यजी के यहां गया। प.पू.श्री गुरूजी ने होमियोपैथी की कुछ दवाईयाँ बतायी। उनका आशीष लेकर हम नागपुर आये। 1996 की गुरूपूर्णिमा के बाद वर्धा में मुझे प.पू.श्री गुरूजी ने आशीष देकर कहा कि आप बच गये हो। हमने आपको बचा लिया।

प.पू.श्री गुरूजी की महा समाधि के बाद मुझे bleeding की फिर से तकलीफ शुरू हुई। मैंने ये बात वर्धा में एक गुरूबंधु से कही। उन्होंने मुझे प.पू.श्री गुरूजी के बताये हुए एकादशी का व्रत करने को कहा। व्रत कैसे करना यह विधि उन्होंने बतायी। पाँच एकादशी का संकल्प करके श्री भगवती के मंत्र का जप करना था। मैंने व्रत आरंभ किया। एक दिन शाम को जब मैं श्री घुशेजी के यहां गया था तो उन्होंने मुझे एक होमियोपैथी के डॉ.का नाम बताया। उस दिन 26 जनवरी होने के कारण दवाखाने में डॉ. आने की कोई उम्मीद नहीं थी। मैं घर लौट रहा था रास्ते में मुझे दवाखाना खुला दिखा। मैंने अंदर देखा तो डॉ. अकेले ही बैठे थे। उन्होंने कहा मैं आनेवाला नहीं था लेकिन मैं आ गया। प.पू.श्री गुरूजी की कृपा से वो मेरे लिये ही आये थे, यह मेरा विश्वास है। उन्होंने मुझसे मेरी बीमारी के बारे में पूछा, अंततः उन्होंने मुझे गोली दी और कहा इतने दिन सहन किया और कुछ दिन सह लो लेकिन प.पू.श्री गुरूजी की असीम कृपा से मुझे दूसरे दिन से ही आराम हुआ। आज 20 साल हो गये मैं प.पू.श्री गुरूजी की कृपा से स्वस्थ हूँ और उनका आशीष सदैव मेरे साथ है। उनके चरणों में शत् शत् प्रणाम करता हूँ।

मोहन देशपांडे, नागपुर

मैं फिर दोहराता हूं कि भगवान् जब पार्थिव प्रकृति का भार अपने ऊपर लेते हैं तो इसे जादूगर की सी किन्हीं चालाकियों या बहानेबाजी के बिना पूरी तरह और सच्चाई से निभाते हैं।

ॐश्री वासुदेव गुरू परिवार आत्मोत्थान न्यास

शिवपुर मुंगेली

आय– व्यय खातों का सामायोजन 01.04.2016 से 31.03.2017

4,31,090.00 श्री आय खाते जमा

3,29,352.00 श्री एफ डी आर का ब्याज खाते जमा

1,39,081.00 PNB ब्याज

1,90,271.00 SBI ब्याज

3,29,352.00

90,100.00 श्री गुप्त भंडार खातें जमा

9,888.00 श्री बैंक ब्याज खाते जमा PNB/SBI

1,750.00 श्री पुस्तक बिकी खाते जमा

4,31,090.00

2,16,409.00 श्री व्यय खाते लेखे

77,000.00 श्री सेलरी खर्च खातें चैतुराम व विवेक शुक्ला

61,806.00 श्री टी डी एस खर्च खातें PNB / SBI

31,000.00 श्री अध्यक्ष को दी गई राशी खर्च खातें

16,350.00 श्री बिजली बिल खर्च खातें

25,830.00 श्री लेबर मंदिर खर्च खातें

3305.00 श्री बैंक कमीशन एफ डी आर खर्च खाते

818.00 श्री स्टेशनरी खर्च खातें

300.00 श्री मोबाईल रिचार्ज खर्च खातें चैतुराम

2,16,409.00

2,14,681.00 कुल साल भर का खर्च काटकर

बचत आय पुंजी खाते में जमा किया.

4,31,090.00

नोटः– 1. कुल आय खातों से प्राप्त राशि	4,31,090.00
2. कुल व्यय खातों मे व्यय राशि	– 2,16,409.00
बचत शुध्द आय खाता	2,14,681.00
(कुल पुंजी खाते जमा राशि)	2,14,681.00

ॐश्री वासुदेव गुरू परिवार आत्मोत्थान न्यास

शिवपुर मुंगेली

आंकड़ा

01/04/2016 से 31/03/2017 तक

43,05,648.25	श्री पुंजी खाते जमा
1,92,101.00	श्री भूमि कंय खातें जमा
1,83,012.00	श्री मेन्टनेंस खाते जम
48,879.00	श्री भोजन शाला खातें जमा
38,690.00	श्री श्री अवास व्यवस्था खातें जमा
24,318.00	श्री अखण्ड ज्योत खाते जमा
13,050.00	श्री अमित अनंत खाते जमा
12,693.17	श्री विवेक शुक्ला सेलरी खाते जमा
	2,693.17 सत्र 2014 से 2015
	5,000.00 सत्र 2014 से 2015
	5,000.00 सत्र 2016 से 2017
	12,693.17
6,710.00	श्री नन्दकिशोर सोलंकी खाते जमा
31,000.00	श्री अध्यक्ष की राशि जमा सत्र 16–17
48,56,101.42	

25,50,534.00	श्री एफ डी आर खाते
18,70,220.00	श्री मंदिर भवन निर्माण खाते
1,71,971.00	श्री भारतीय स्टेंट बैंक मुंगेली एकाउंट नं. 31505295999 खातें
1,12,067.42	श्री पंजाब नेशनल बैंक मुंगेली एकाउन्ट नं. 2526000100108533 खातें
50,227.00	श्री दरी गद्दा रजाई खातें
14,925.00	श्री कृषि उद्यान खातें
39,872.00	श्री फर्नीचर खातें
9,000.00	श्री इनवर्टर खातें
6,930.00	श्री बर्तन खरीदी खातें
2,722.00	श्री मंदिर घण्टी खातें
2,359.00	श्री ईलेक्ट्रीक पम्प खातें
2,500.00	श्री राम सुमेर यादव खातें
2,000.00	श्री पुरू पटेल खातें
1,500.00	श्री चैतु राम स्टाफ एडवांस
500.00	श्री चंदा रजक रीवां खातें
	48,37,327.42
18,774.00	श्री पोते बाकी 31.3.2017
	48,56,101.42